रा मा नु ज

लेखक

डा० रांगेय राघव, एम० ए०, पी-एच० डी०

कि ता ब म ह ल

इलाहाबाद

प्रथम सस्करण, १९५२

प्रकाशक—किताब म न, इलाहा ाद।

मुद्रक—सदलराम ज यस ाल, रामप्रिंटिंग प्रेस, कीटगज, प्रयाग।

दो शब्द

प्रस्तुत नाटक रामानुजाचार्य के जीवन को चित्रित करता है। वे अपने समय के एक बडे क्रान्तिकारी विचारक थे। प्रत्येक युग की अपनी बाधाएँ होती हैं। अत. उनका चरित्र देखते समय उन बाधाओं को भुला देना कभी ठीक नही है। उनका समय १०७४ विक्रमाब्द से ११९४ वि० तक माना जाता है।

रामानुज ने चमारो को अधिकार दिया। उनके विषय मे मुसलमान राजकुमारी के सबन्ध में जो कथा है, वह भी उनकी सहिष्णुता का प्रतीक है। मैने इस नाटक मे किवदतियाँ और परपराओ को भी लिया है।

रामानुज के समय मे दक्षिण मे तो मुसलमान और ईसाई आ ही गये थे, उत्तर मे भी थे। उस समय तो मुसलमान शासक केवल लूट मे लगे थे। राज करने का प्रश्न उनके सामने भी नही आया था।

रामानुज के समय मे पाशुपत सप्रदाय भी अवशिष्ट था।

यह सत्य है कि रामानुज चमारो को पूर्ण अधिकार नही दिला सके, परन्तु भक्ति के माध्यम से समानता का ब्राह्मणो मे सदेश सुनाने वाले वे प्रथम व्यक्ति थ। शकराचार्य ने भी ब्राह्मण, इन्द्र और कुत्ते को समान कहा था, परन्तु व्यवहार मे उसे न ला सके थे। शकर के नीरस अद्वैत-वाद मे बौद्धो के शून्यवाद का दु.खवाद था। रामानुज ने दुख के स्थान पर आनद और प्रेम को प्रतिष्ठापित करके समाज को एक नया जीवन दिया था।

रामानुज विवाहित थे। बाद मे उन्होंने सन्यास ले लिया था। वे उदार-हृदय और विद्रोही थे। गोपुर पर चढ़कर गुरुमत्र सुना कर उन्होने ब्राह्मणो की तात्कालिक सर्वाधिकार भावना को तोड दिया था। वे आलवार परम्परा से पूर्ण प्रभावित थे।

दक्षिण के ब्राह्मण पहले 'वडमन' (Vadaman) कहलाते थे। यह ब्राह्मण शब्द का तामील अपभ्रंश है। रामानुज ने जैनो को ब्राह्मण बना कर ब्राह्मण जातिकट्टरता को हटाकर उसके स्थान पर ब्राह्मणत्व को भी मतानुसार बदलने वाला बना दिया। उनके समय से ही दक्षिण मे 'श्रीवैष्णव' प्रारम्भ हुए। उनका प्रभाव उत्तर भारत पर बड़ा गहरा पड़ा था। रामानन्द उनकी शिष्य-परम्परा मे थे।

रामानुज ने उत्तर भारत मे भी यात्रा की थी। वे बडे अनुभवी और विद्वान् थे।

प्रस्तुत नाटक के प्रमुख पात्र सब ऐतिहासिक हैं। कुछ के नाम नही मिलने के कारण मैंने रख लिये हैं। घटनाओं के लिये पात्र मैंने बनाये अवश्य हैं, परन्तु वह तब ही जब कि घटना का इतिहास या परम्परा मे आधार प्राप्त हुआ है।

कुछ लोग कह सकते हैं कि रामानुज ब्राह्मण-पुनरुत्थानवादी थे। यह असत्य है। वे वैष्णव सप्रदाय के प्रवर्त्तक थे, क्योकि उन्हे ही विशिष्टाद्वैत सप्रदाय के आदि प्रवर्त्तक की उपाधि दी गई है। वैष्णव सप्रदाय उस समय के कट्टर ब्राह्मणो के स्वार्थों पर आघात था। ब्राह्मण शासक थे---समाज के। वैष्णव सप्रदाय छुआछूत का विरोधी भी था।

बारहवी शती मे जाति पॉति विरोधी लिङ्गायत वसव के नेतृत्व मे हुए। वे वेद को स्वीकार नही करते थे। परन्तु रामानुज वेदान्तगत सप्रदाय मे थे। यही उनका बधन था। परन्तु इस बधन के होते हुए भी वे बहुत आगे बढे हुए थे।

अधिकाशतः दक्षिण भारत की परम्पराओ का ज्ञान हिंदी म कम ही है। हमारे उत्तर से हमारे दक्षिण का बड़ा गहरा सबध रहा है। मध्य-कालीन भक्ति-काल तो एक प्रकार से अपना दार्शनिक आधार दक्षिण से भी प्राप्त करता रहा है।

नाटक अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतवर्ष मे कला का सबसे रम्य रूप रहा है। 'काव्येषु नाटक रम्यम्' की किवदती भी इसी कारण प्रसिद्ध

है। विदेशो मे भी नाटक ही प्राचीन और मध्यकाल में महत्वपूर्ण था। आधुनिक समय में नाटक के विषय मे अनेक मतभेद हो गये हैं। समस्या-मूलक नाटको के रूप मे हमे ऐसे नाटक दिखाये गये हैं जो मनुष्य की भावनाओ के ऊपर समस्या को इस रूप मे प्रस्तुत करते हैं कि वे नाटक अपनी प्राण शक्ति को खो बैठते है। ससार के प्रत्येक कलाकार को प्रचारक कहना चाहिये क्योकि जो किसी बात का प्रचार नही करता अर्थात् उसे कहता नही, वह अपने ध्येय के साथ न्याय नही करता। परन्तु कहने का कलात्मक ढग प्रत्येक उसके उस वाह्यरूप के साथ बदलना चाहिये, जिसे लेखक उस समय अपना लेता है। जैसे उपन्यास और काव्य मे वह अपनी बात लेख या निबध की तुलना मे कही कम कर सकता है, और नाटक मे तो और भी कम क्योकि नाटक मे निम्नलिखित प्रतिबध होते हे।

नाटक सदैव ही वर्तमान होता है। उपन्यास आदि मे हम 'था' कह कर वर्णन कर सकते हें। नाटक मे तो जो भी होता है, वह उसी समय रगमच पर हो रहा है। उस होते हुए को दर्शक समाज देख रहा है।

नाटक मे लेखक अपनी ओर से कुछ नही कह सकता। उसके पात्रों के मुँह ही उसकी बात कहने के माध्यम है। यही नाटक की सबसे बड़ी कठिनता है। कहने का तो लेखक के पास बहुत कुछ होता है, परन्तु पात्र के मुँह से वह सब कुछ तो नहीं कह सकता, उतना ही कहना उचित हो सकता है, जो पात्र की स्वाभाविकता पर आघात न करे। पात्र की स्थिति को कठपुतली जैसा नही बना दे।

नाटक मे समय, स्थान और घटना का ऐक्य जहाँ पूर्ण होता है वहाँ नाटक पूर्ण सफल माना जाता है क्योकि खेले जाने के दृष्टिकोण से वह सबसे सरल होता है और उसमे रस का परिपाक भी पूर्ण होता है। परन्तु नाटक की सफलता का इससे भी बड़ा कारण है मानवीय भावनाओं का वह सफल चित्रण जो समाज और व्यक्ति के पारस्परिक सबन्ध की कसौटी है। जब पात्र वर्ग विशेष या रूप विशेष का प्रतिनिधित्व करते

हैं तब वे वही तक नाटक मे रम्य हैं जहाँ तक वे पात्र को निर्जीव नही बना देते। (Type) या विशेष चरित्र के रूप मे वर्णित पात्र यदि अन्य घटनाओं और पात्रों से अपना तादात्म्य छोड़ देते हैं तो वे अपने आपका न्याय्य नही बना पाते।

लेखक को काल व्यवधान करने के लिये भी नाटक मे उपन्यास की भी स्वतन्त्रता नही होती। इसीलिये विष्कम्भक के द्वारा वह अनेक घटनाओ और परिस्थितियो को स्पष्ट करता है। अंग्रेजी नाटको मे 'कोरस' से यही काम लिया जाता था।

परन्तु इस सबके रहते हुए भी अब नाटक को खेलने मे पहले से अधिक सुविधा है। परन्तु वह तब ही अधिक है जब रगमच की ही सजावट नाटक के प्रवाह को रोक न ले। कई नाटको मे रगमच की पृष्ठ-भूमि पर लगे मकड़ी के जाले का भी उल्लेख होता है, जो स्पष्ट ही समाज को दिखाई नही दे सकता। मैने इसीलिये इन छोटी वस्तुओं के प्रगटीकरण का शेक्सपीरियन ढग अपनाया है कि दर्शक पर वहाँ एक-दो वाक्य अच्छा प्रभाव डाल सकते हैं जहाँ इन अदृश्य बातों पर दर्शक के चूक जाने की ही सभावना अधिक है। छाया चित्रों का समावेश नाटक को दुगुना रगमच प्रदान करता है। विद्युत प्रकाश या कोई तीव्र प्रकाश पर्दे के पीछे खडे पात्रो की छाया को दर्शक को दिखा सकता है। इससे न केवल रगमच का विस्तार होता है, वरन् दुगुना काम भी एक साथ रगमच पर प्रस्तुत होता है। उदाहरण के लिये रामानुज का गोपुर पर से पुकारना एक महत्वपूर्ण विषय है, रगमच पर गोपुर जैसी बड़ी वस्तु तो दिखाई नही जा सकती। यदि रगमच पर गोपुर का ऊपरी भाग बनाकर रामानुज को प्रस्तुत किया जाये तो बाकी सब भूमि पर रहते हैं, अत: उन्हे नही दिखाया जा सकता। छाया चित्र के रूप मे दोनो कार्य हो सकते हैं।

नाटक उदात्त भावो का ही चित्रण नही है। अतर्विरोध दोनों का होना उसमे आवश्यक है। समस्या का आधार समाज ही है। कालिदास

का 'शकुन्तला' नारी के अधिकार पर प्रकाश डालता है। 'महाभारत की शकुन्तला तो दुष्यत से गाधर्व विवाह करने के पहले अपने पुत्र को सिहासनस्थ करने की प्रतिज्ञा करा लेती है, परन्तु कालिदास के समय मे नारी अपनी स्वतन्त्रता की चेष्टा मे है। वहाँ केवल शकुन्तला का प्रेम ही मुख्य है। भवभूति का 'उत्तर रामचरित' भी नारी के प्रति सवेदना ही है।' तो समस्या ही मुख्य है जो मानवीय भावनाओ का मुख्य आधार है। समस्या का रूप प्रत्येक युग मे बदलता है। जहाँ एक समय मे वह व्यक्ति प्रधान होती है, दूसरे समय मे वह समष्टि प्रधान हो जाती है। समष्टि और व्यष्टि के इस द्वन्द्व मे वह संतुलन तभी तक नाटक मे श्रेष्ठ है जहाँ बहिर्द्वन्द्व अतर्द्वन्द्वो को आघात नही पहुँचाते, वरन् उनसे हल निकलता है, परन्तु व्यक्ति और पात्र को चरित्र का भी विकास होता रहता है।

नाटक मे गीत होना भारतीय परम्परा मे अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन नाटकों में गेय कथोपकथन होते थे, वे अब नही होते। पारसी थियेटर के युग तक हिन्दी मे भी थे। अब गीत जहाँ व्यक्ति को अत. प्रवृत्तियो को प्रकट करते हैं, दूसरी ओर वे उसके सामाजिक सबधो पर भी प्रकाश डालते हैं।

व्यग्य ही नाटक का प्राण है। व्यग्य अभिव्यजना का वह सुधरा हुआ रूप है जो उसमे एक शक्ति डालता है।

मूलतः मानव वही है, यह बहुत सुनने मे आता है क्योंकि घृणा रागद्वेष और प्रेम मे वह समान है। परन्तु यह एक आशिक सत्य है। सामाजिक व्यवस्था का इन बातो पर बहुत प्रभाव पडता है। प्रत्येक युग मे प्रत्येक मनुष्य के अपने समाज से जो सबध होते हैं, वह उन्ही मे रहता है। अतः प्रत्येक युग विशेष मे उसके सबन्ध भी बदलते रहते हैं। नाटक इसीलिये अधिक शक्तिप्रद साधन है कि वह प्रत्येक युग को उसके वर्तमान मे ही प्रस्तुत करता है।

रांगेय राघव

रामानुज के ग्रंथ

(१) श्रीभाष्य (२) वेदान्त सग्रह (३) वेदातदीप (४) वेदान्तसार (५) वैदान्ततत्वसार (६) गीताभाष्य (७) गद्यत्रय (८) भगवदाराधनक्रय (९) अष्टादश रहस्य (१०) कण्टकोद्धार (११) कूट सन्देह (१२) गुणरत्न कोष (१३) ईशावास्योपनिषद् भाष्य (१४) चक्रोल्लास (१५) देवतापारम्य (१६) दिव्यसूरि प्रभाव दीपिका (१७) न्यायरत्नमाला (१८) नित्यपद्धति (१९) नारायण मन्त्रार्थ (२०) नित्याराधनविधि (२१) न्यायपरिशुद्धि (२२) न्यायसिद्धाज्जन (२३) पञ्चपटल (२४) पचरात्ररक्षा (२५) मणि-दर्पण (२६) प्रश्नोपनिषदव्याख्या (२७) मतिमानुष (२८) मुण्डकोपनिषद्व्याख्या (२९) योगसूत्र भाष्य (३०) रत्नप्रदीप (३१) रामपटल (३२) रामपद्धति (३३) रामपूजापद्धति (३४) राममन्त्रपद्धति (३५) रामरहस्य (३६) रामायणव्याख्या (३७) रामार्चापद्धति (३८) वार्त्तामाला (३९) विशिष्टाद्वैतभाष्य (४०) विष्णुविग्रहशासन स्त्रोत (४१) विष्णुसहस्रनाम भाष्य (४२) वेदार्थ सग्रह (४३) वैकुण्ठगद्य (४४) शतदूषणी (४५) शरणा-गति गद्य (४६) सच्चरित्र टीका (४७) श्वेताश्वतरोपनिषद् व्याख्या। (४८) सङ्कल्प सूर्योदय टीका (४९) सर्वार्थसिद्धि इत्यादि।

पात्र

रामानुज वडयवर

केशव सोमयाजी हारीत—पिता

यादवप्रकाश—प्रथम गुरु

यामुनामुनि—द्वितीय गुरु

महापूर्ण स्वामी—तृतीय गुरु

गोष्ठिपूर्ण—चतुर्थ गुरु

गोविन्द भट्ट—मौसेरा भाई

कुरेश—यादवप्रकाश का शिष्य

वरदरङ्ग—यामुनामुनि का पुत्र

कुलोत्तुग—चोल राजा

वरदाचार्य—श्रीरगम् का पुजारी

जिनरत्न—जैन श्रमण

मुरुगन्
कुप्पन् } —चमार

शैवराज—गुरु

पात्रियाँ

कान्तिमती—माता

वदनायकी—पत्नी

चिली—मुरुगन की पत्नी

राजलक्ष्मी—वरदाचार्य की पत्नी

अलमेलुमगा—महापूर्ण की पत्नी

शाहजादी

एक नर्त्तकी

तथा

सैनिक। विद्यार्थी। शिष्य। मुसलमान सैनिक। भिखारी।
चमार। नागरिक। भील, भीलनी। शैव, जैन। बाँदियाँ।
पुजारी। पदाधिकारी, सेनापति आदि। नर्त्तकियाँ।

[इस नाटक के गीतों को दक्षिण भारतीय संगीतानुसार गाना ही उचित है। वे वातावरण को पुष्ट करेंगे। अंक ६ के प्रथम दृश्य का गीत बजारों के सगीत का होना चाहिये।]

अंक १

दृश्य १

[पथ। कुछ अद्वैतवादी साधु गाते हुये निकलते हैं।]

गीत

भज गोविंद भज गोविंदं
गोविंद भज मूढ़मते
मँडरायेगा जभी शीश पर
यम का कर वह वाम रे
डुक्रिकरणे[1] नहीं आयेगा
पागल तेरे काम रे
भज गोविंद भज गोविंद
गोविंद भज मूढ़मते।
झूठा है ससार, स्वप्न की
माया का सा लेखा रे
जल पर जैसी खिची हुई है
यह चल चचल रेखा रे
भज गोविंदं, भज गोविंद
गोविंद भज मूढ़मते।

---

[1] सस्कृत व्याकरण का सूत्र। यतिराज शकर ने एक विद्यार्थी को यह सूत्र रटते देखकर उपर्युक्त बात कही थी।

[कुछ स्त्रियाँ आती हैं ।]

१ स्त्री : अरे, यह लोग तो बढ़ते ही जा रहे हैं ।

२ स्त्री . क्या जाने सारे पुरुष अब सन्यासी ही हो जायेंगे । फिर जाने क्या होगा ?

१ सन्यासी : देवी ! ससार ! संसार एक दुख भरी उलझन है । दूर वन मे निवास हो, वृक्षो का वल्कल धारण किये हो, ससार के समस्त राग-द्वेषो से दूर । यतिराज तुमने सोतों को जगा दिया ।

२ स्त्री : भले ! घर मे माँ को छोड आये होगे ?

[सन्यासियो का प्रस्थान ।]

१ स्त्री : सब ही गृहत्यागी हो रहे हैं ! !

[तूर्य निनाद होता है । पथ पर जयजयकार होता है । स्त्रियाँ एक ओर हो जाती हैं । फिर चली जाती हैं ।]

जय ! रामानुज की जय !

जय ! रामानुज की जय !

[कुछ नागरिकों का प्रवेश ।]

१ नागरिक : आश्चर्य है, यह तरुण तो बडा मेघावी है ।

२ नागरिक : मन को केन्द्रित करना साधारण कला नही है ।

३ नागरिक : कला ? यह कला नही, यह सब एक साधना है ।

१ नागरिक : चलो, चलो । वह रामानुज की सवारी आ रही है ।

[सबका प्रस्थान । तब कई लोग रामानुज को कन्धों पर बिठाये आते हैं ।]

१ मनुष्य : (पुकार कर) सावधान ! महामेधावी रामानुजाचार्य .....

[एक युवती शंख बजाती है । स्वर डूब जाता है । सबका प्रस्थान । वृद्ध केशव हारीत सोमयाजी का कान्तिमती के साथ प्रवेश । कई नागरिक आते हैं ।]

केशव हारीत : यह दिगतव्यापी आमोद आज क्यो छा रहा है, कान्तिमती !

१ नागरिक : आप नही जानते ? आज रामानुज ने राजकन्या को ब्रह्मराक्षस के भ्रम से मुक्त कर दिया है। गुरु यादवप्रकाश ने बड़े-बड़े यत्न किये.. ...

२ नागरिक : रामानुज ! यादवप्रकाश उसके सामने क्या है ?

३ नागरिक : गुरु तो सुनते हैं, बड़े क्रुद्ध हैं !

[नागरिक हँसते हैं। नेपथ्य से जय ! रामानुज की जय]

१ नागरिक : अरे उधर चलो।

२ नागरिक : किसका पुत्र है यह रामानुज ! इसका पिता धन्य है...

[सबका प्रस्थान। हर्ष से गद्गद होकर वृद्ध केशव हारीत सोमयाजी अपनी आँखो से बहते आनन्दाश्रु पोछता है।]

केशव : कान्तिमती ! देख रही है ! तेरे पुत्र का सम्मान हो रहा है। सुवर्ण मडित गजराजो की भीड़ से पथ विक्षुब्ध हो रहा है।

कान्तिमती : यह सब तुम्हारा ही तो प्रसाद है स्वामी !

[नेपथ्य से—जय ! रामानुज की जय ! सेना निकलती है। वाद्यध्वनि ! फिर पटाक्षेप।]

दृश्य २

[काञ्चीपुर में यादवप्रकाश की पाठशाला। यादवप्रकाश उच्चपीठ पर स्थित हैं। कुछ विद्यार्थी बैठे हैं। रामानुज प्रसन्न सा प्रवेश करता है।]

रामानुज : गुरुदेव की जय ! आज मेरा जीवन आपके चरणों मे सफल हुआ।

यादवप्रकाश : **(गंभीरता से)** क्षणिक सफलता से मदमत्त न हो वत्स ! श्रद्धा जीवन मे काम नहीं देती। ज्ञान का पथ अत्यन्त दुष्कर

है। केवल तर्क के बल पर ही यतिराज शकर ने उत्तर तक अपनी दिग्विजय की थी। और अपनी प्रचड मेधा से मडन मिश्र जैसे महापंडित को पराजित किया था।

रामानुज : गुरुदेव ! क्या आप मुझसे प्रसन्न नही हैं ? फिर तर्क के रहते हुये मेरे प्रश्न का उत्तर नही मिला। देव ! यदि यह सब माया है तो ससार मे यह स्नेह क्यो है ? क्या भगवान इतना निष्ठुर है ?

यादवप्रकाश : रामानुज ! तू अब बालक नही है। तू अपनी शिक्षा समाप्त कर चुका है। मेरे सिर के केश तुझे वेद और उपनिषद् का ज्ञान देते-देते पक गये, किन्तु मुझे क्या मिला ?

रामानुज : देव ! मेरे लिये गुरु से अधिक पवित्र इस संसार में कुछ भी नहीं है।

१ विद्यार्थी : गुरुदेव ! यह झूठ है। कल कुरेश का विरोध करके रामानुज ने वरदराज के मदिर मे आपके तर्कों का खंडन किया था। आज राजकन्या को ठीक करके तो इसका गर्व कही समा ही नही पाता।

यादवप्रकाश : क्या यह सत्य है रामानुज ?

रामानुज : देव ! गुरुभक्ति का तात्पर्य यह तो नहीं कि मैं अपने तर्क का त्याग कर दूँ ?

यादवप्रकाश : (हँसकर) मूर्ख ! तर्क अज्ञान की पताका है जो वासनाओं की भीड़ को जगा कर पागल कर देता है। अहंकार उस समय मदोद्धत होकर तृष्णा के अंकुश चुभा कर चित्त रूपी हाथी को रणोन्मत्त बनाना चाहता है। और परिणाम जानता है ? वह हाथी अपनी वासना को कुचलने लगता है।

रामानुज : गुरुदेव ! आप क्रुद्ध हो गये हैं। तर्क को आप सदैव परशुराम का कुठार कहा करते थे। तर्क से ही यतिराज शंकर ने......

यादवप्रकाश : मूर्ख ! उस भरे घडे से अपने छलछलाते, आधे भरे घड़े की तुलना मत कर।

[पाँवों पर गिर कर]

रामानुज : गुरुदेव ! आपके मुख से यह कातर वाणी क्यो ? जो आपने दिया था, वही तो मेरा धन है। क्या उसे धरातल में गाड़ कर उस पर सर्प की भाँति बैठ कर अपने विष से ससार को भयभीत किया करूँ ?

यादवप्रकाश : (उठ कर) तेरी जडता की पराकाष्ठा हो गई है, वज्रमूर्ख ! निकल जा यहाँ से।

रामानुज : प्रभु ! आज ही तो मैने आपका नाम उज्ज्वल करने का प्रथम यत्न किया है। मेरा अपराध ?

१ विद्यार्थी : तुम गुरुदेव के तर्कों का जगह-जगह खडन करते फिरते हो और पूछते हो, मेरा अपराध ?

२ विद्यार्थी : गुरुदेव ! राजकन्या को ठीक क्या कर दिया, इसे गर्व हो गया है।

रामानुज : क्या ज्ञान के क्षेत्र मे बधनों से विकास संभव है ?

यादवप्रकाश : चाण्डाल, तेरा इतना दुस्साहस ! निकालो इसे . ...

[दोनों विद्यार्थी रामानुज के हाथ पकड़ लेते हैं।]

रामानुज : गुरुदेव ! प्रणाम ! भगवान रगनाथ साक्षी है कि मैने स्वप्न मे भी आपके विरुद्ध कुछ नही सोचा। आपका जलाया दीपक, आप भी नही बुझा सकेंगे.... .

यादवप्रकाश : वत्स ! इसे निकाल दो . ...

रामानुज : निकाल दो, स्वय गुरु को क्रुद्ध करके कभी नही जाऊँगा।

दोनों विद्यार्थी : तब यही सही।

[घसीट कर निकालते हैं।]

रामानुज · (द्वार पर खड़े होकर) गुरुदेव ! ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु साक्षी हैं कि मैने कभी आपका अनादर नहीं किया। यदि

आप यही चाहते हैं कि मुझे जीवन मे कभी सफलता न मिले, तो यही आज्ञा दें।

१ विद्यार्थी : (हँसकर) जा जा, मूर्ख! जैसे गुरुदेव तेरी सफलता से डरते हैं।

२ विद्यार्थी : गुरुदेव, यह अपने को समझता क्या है?

१ विद्यार्थी : (रामानुज से) बहुत दिन से आनद कर रहे थे, आज ज्ञात हो गया न? समझे थे पाठशाला इन्हीं की है कि गुरुदेव कुछ रहे ही नही?

२ विद्यार्थी : अज्ञान का नाश हो, गुरुकृपा से नाश हो।

यादवप्रकाश : (विजय भाव से मुस्कराकर) नाश तो हो गया वत्स।

रामानुज : गुरुदेव मै जाता हूँ। परतु मेरे हृदय मे क्रोध नहीं है, मै आज भी ... ...

यादवप्रकाश ' वत्स इसे मेरी आँखो से दूर कर दो।

१ विद्यार्थी : जाता है या नही?

२ विद्यार्थी : अरे यह तो घोर निर्लज्ज है ... ...

[रामानुज का प्रस्थान। सब अट्टहास करते हैं।]

दृश्य ३

[पथ। रामानुज उदास सा खड़ा है। उसके साथ गोविन्द भट्ट है।]

गोविन्द भट्ट : फिर क्या हुआ?

रामानुज : गुरुदेव क्रोध से भर गये। उन्होंने मुझे निकाल दिया।

गोविन्द भट्ट : तुमने उन्हे सतुष्ट करने का यत्न नही किया?

रामानुज : मुझसे पूछो गोविन्द! मैने क्या नहीं किया? किंतु वे गुरु थे। उनको बोलने का अधिकार था, मुझको सुनने का। क्रोध एक बहुत भयानक अवस्था है, गोविंद जिसमें मनुष्य का युग-युग का सञ्चित

ज्ञान विनष्ट हो जाता है, जैसे प्रचण्ड प्रभंजन समुद्र मे पडे पोत अहकार की लहरों के थपेड़े मार कर डुबो देता है ।

गोविन्द : तुम भी उत्तेजित हो रहे हो, रामानुज ?

रामानुज . नही गोविद मुझे विक्षोभ हो रहा है । मुझे लगता है मेरी साधना मे कही कोई कमी अवश्य रह गई जिसके कारण मै उन्हे अपनी बात ठीक से नही समझा सका । जब गुरुदेव के पास मेरे तर्क का कोई प्रत्युत्तर नही था तो उन्होने मेरी बात को स्वीकार करने के स्थान पर मुझे ठुकरा क्यो दिया ?

गोविंद . (हँस कर) पागल ! मनुष्य दूसरे को मरते देख कर माया-माया कहता है । उसे समझाता है, परतु अपने घर मे जब मृत्यु होती है, तो उसके शोक के पारावार का कोई अत ही दिखाई नही देता । ससार मे सब एक दूसरे को उपदेश देते हैं, किंतु उन उपदेशो को स्वयं ग्रहणकरना उनके लिये बहुत असभव होता है । दूसरे, यतिराज के तर्को के पाण्डित्य का गर्व वहन करने वाले गुरुदेव कभी इस बात को स्वीकार कर सकते हैं कि उनके सामने ही तुम उनकी विद्वत्ता पर टीका-टिप्पणी करो ?

[यामुनामुनि का प्रवेश ।]

यामुनामुनि : तुम कौन हो ?

रामानुज : देव ! मै रामानुज हूँ । देव कहाँ से आते हैं ?

यामनामुनि : तुम्हीं रामानुज हो ? भगवान की लीला भी कैसी विचित्र है । श्रीरंगम् मे तुम्हारी बड़ी प्रसिद्धि फैल रही है, रामानुज । मैं वही एक मठ मे रहता हूँ । दीन ब्राह्मण हूँ ।

रामानुज : देव ! दीन तो वह है जिसके सस्कार नष्ट हो गये हो , जिसकी प्रवृत्ति कलुषित हो गई हो और जो अपने स्वाभिमान को खो चुका हो । आपके मुख का तेजस् मुझे यह विश्वास नहीं करने देता ।

यामुनामुनि : पुत्र ! तुम किससे शिक्षा प्राप्त कर रहे हो ?

रामानुज : मै गुरुओ में श्रेष्ठ यादवप्रकाश के समीप वेदात का अध्ययन करता था।

यामुनामुनि : था, तो क्या अब नही करते ?

गोविद : देव ! शिक्षा पूर्ण हुई।

रामानुज : और गुरु ने क्रुद्ध होकर मुझे अपनी पाठशाला से निकाल दिया।

यामुनामुनि : दुर्दैव ! क्या कहा तुमने ? गुरु की प्रतिस्पर्धा अपने ही शिष्य पर प्रतिफलित हुई ? कोई उसकी लीला नही जानता रामानुज। मनुष्य और पशु मे ईर्ष्या और क्रोध के आवरण मे कुछ भी भेद नही होता। बिल्ली जिस समय बच्चो को जन्म देती है, तब उसे भयानक भूख लगती है और वह अपनी ही सतान को खाकर अपनी भूख मिटाती है। मनुष्य की सर्वग्राहिणी तृष्णा और अधिकार की भूख वैसी ही होती है। लोभ और अह की चक्की के पाटो मे पड़ा मनुष्य अन्न के दाने के समान पिस जाता है।

गोविद : देव ! आप इतने विचलित क्यो हो गये ?

यामुनामुनि : मुझे दुःख हुआ है वत्स। अपनो के लिये दुख करना कौन नही जानता। किंतु मेरे सामने दूसरा ही प्रश्न है। मै इस तरुण मे प्रतिभा देख रहा हूँ। यतिराज शकर के मत का प्रतिपादन करने वालो का त्याग धीरे-धीरे उनकी माया की भॉति ही जड़ हो गया है। रामानुज में बीज है। प्रत्येक बीज को पल्लवित करने के लिये उसमे स्नेह धारा छोडने की आवश्यकता है, तभी तो वह वसुधरा के गर्भ मे से मृत्तिका के आवरणों को फाड कर बाहर निकलता है।

रामानुज · देव ! एक बार का अपमान क्या मुझे रोक सकता है ? और पिता और गुरु द्वारा अपमान क्या कोई अपमान होता है जिसके लिये खेद किया जाये ? देव ! उन्होंने ही मुझे बोलना सिखाया है, वाणी दी है। गुरु अपने पात्र से शिष्य के पात्र को भरता है। एक अवस्था

ऐसी भी आती है कि गुरु का पात्र समाप्त सामग्री देखता है, तब गुरु मे विक्षोभ हो तो आश्चर्य ही क्या ?

यामुनामुनि : धन्य है तू रामानुज ! किंतु यादवप्रकाश को इतना अहंकार क्यो ?

रामानुज : देव ! वे मेरे गुरु हैं । उनके प्रति सम्मानसूचक शब्दो का व्यवहार करें तो मै कृतार्थ होऊँगा । अहकार वह नहीं है । तर्क करते समय जब वादी-प्रतिवादी समान हो जाते हैं, तब गुरु को स्मरण हो आता है कि मेरा शिष्य ! जिसे मैंने ही इतना सिखाया है, वह मेरे ही सन्मुख इस प्रकार बोले ? देव ! केवल थोड़ी सी बात है ।

यामुनामुनि : साधु रामानुज ! तुम जैसा शिष्य पानेवाले गुरु भी धन्य है । परन्तु गुरु यादवप्रकाश का यह व्यवहार दभ ही कहलायेगा ।

रामानुज : **(जोर से)** देव ! यह आप क्या कह रहे हैं ?

गोविंद : ब्राह्मण देवता ! आप कहाँ ठहरे हैं ?

यामुनामुनि वत्स ! मै जिस कार्य से काञ्ची आया था, वह पूर्ण हुआ । मै अब लौट जाऊँगा ।

रामानुज : देव आपने अपना परिचय नही दिया ?

यामुनामुनि · **(मुस्करा कर)** और क्या कहूँ वत्स ! ऐसा कोई प्रसिद्ध नही हूँ कि मेरे नाम का कोई महत्व हो । साधारण मनुष्य जब अपना नाम बताने लगता है और सोचता है कि उसे कोई याद रखेगा, तो उससे बढ कर मूर्खता और क्या है ? मै वृद्ध हूँ । तुम्हे आशीर्वाद देता हूँ कि सत्पथ पर निरन्तर बढे जाओ ।

[हाथ उठाता है । दोनों प्रणाम करते हैं । यामुनामुनि जाते हैं ।]

रामानुज तुमने देखा गोविद ?

गोविद : क्यो क्या मै सो रहा था ।

रामानुज : यह भी कोई बड़ा विद्वान था ।

गोविद : आकाश में एक से एक बढ कर जगमगाता हुआ नक्षत्र

है, रामानुज, पर इमे अपना घर का दीपक ही आलोक दिखाता है। चलो घर चलें।

रामानुज : घर ?

गोविंद : अब और कहाँ ठिकाना है ?

रामानुज ठीक है गोविंद। चलो।

[प्रस्थान। पटाक्षेप।]

दृश्य ४

घर

[वृद्ध केशव हारीत सोमयाजी बैठे हैं। कान्तिमती खड़ी है।]

कान्तिमती : तुम उसे समझाते क्यों नही ?

केशव . उसे क्या समझाऊँ, कान्ति ? वह वेदों मे पारंगत हो गया है। सोलह वर्ष के उपरात पुत्र पिता के मित्र के समान हो जाता है।

कान्तिमती . पर मुझे तो वह वैसा ही नादान दिखाई देता है। वह बहुत सीधा है और ससार बड़ा चतुर है। उसे कुछ सिखाते क्यों नही ? गुरु व्यवहारकुशलता नही सिखाते। वह पिता ही को करना पड़ता है।

केशव : ममता की जाली फाड़ कर देखो, देवी। तुम्हारा पुत्र बड़ा तेजस्वी है। मैने ससार को घर मे ही नही, बाहर भी देखा है। ससार मे वे ही आगे चल कर महान् बनते हैं जिनके हृदय मे ज्ञान के लिये अद्भुत अतृप्ति होती है। मेरा पुत्र मेधावी है। मै क्या व्यवहारकुशलता के लिये अपने पुत्र को वह छलना सिखाऊँगा जो उसकी सद्प्रवृत्ति को कुण्ठित करती है !

कान्तिमती : तुम्हारा पुत्र मेधावी है, यह तुम से अधिक मेरे लिये गर्व का विषय है क्योंकि मैने उसे जन्म दिया है, स्वामी। मैं क्या उसके फैलते हुये यश से प्रसन्न नहीं होती ? किंतु पुरुष होने के नाते तुम जहाँ केवल आकाश को देखते हो, मै धरती को भी देखती हूँ।

केशव : क्या मतलब ?

कान्तिमती . वह घर की ओर से उदासीन है ।

केशव : (हँस कर) अरे वह कुछ नहीं देवी। वह तो सब तब तक है, जब तक मै हूँ। पिता के रहते कौन से पुत्र ने घर को देखा है ? मै ही क्या करता था। अभी तो उसे मालूम है न कि वृद्ध जीवित है, कुछ न कुछ कर ही लेगा। जब मै न रहूँगा न ! तब यही तेरा अबोध लाड़ला, सब काम ऐसे सँभाल लेगा कि तू देख देख कर आश्चर्य करेगी। अभी वह बालक ही तो है। अभी उसकी काम करने की आयु ही कहाँ है। यही तो कुछ खेलने खाने के दिन हैं।

कान्तिमती : तुम भी अजीब हो। कभी उसे विद्वान कहते हो कभी बालक। तुमने ही उसे बिगाड़ा है।

केशव : (हँसकर) ससार में यही विख्यात है कि माता की ममता पुत्र का सर्वनाश करती है, यहाँ मै उल्टी बात सुन रहा हूँ।

[कुरेश का प्रवेश।]

कुरेश : अडियेन दासन्* ! सुना आपने ?

केशव मगल हो पुत्र ! क्या हुआ ?

[रामानुज का प्रवेश।]

रामानुज : मै कहता हूँ। पूज्य पितृपाद मे मै निवेदन करता हूँ। मुझे गुरुदेव ने अपनी पाठशाला से निकाल दिया है। क्यो कुरेश ! यही कहने आये थे ?

कुरेश : निश्चय यही।

[सब आश्चर्य से देखते हैं।]

कान्तिमती : पुत्र तुझे ? गुरु ने ?

रामानुज : हाँ माता। मुझे ही।

कान्तिमती : धिक्कार है तुझे जो गुरु का क्रोध लेकर घर लौटा है।

---

* ब्राह्मणों में प्रचलित प्रणाम के शब्द विशेषकर विशिष्टाद्वैतो मे।

रामानुज : सत्य के ऊपर आघात सहना स्वय गुरु ने महापातक बताया था। माता! मैने इसी से सारे आघात को अपने ऊपर लेकर सत्य की रक्षा की है।

केशव : साधु वत्स! साधु! मुझे तुमसे यही आशा थी। देवी! केशव हारीत सोमयाजी की यही गौरवमय कुल परम्परा है कि अधर्म के सामने कभी कोई नतशीश नही हुआ।

कान्तिमती : क्या कहते हो?

केशव : कुछ नही देवी! घर आने के पूर्व ही मैने यह सब विवाद पथ मे ही सुन लिया था। काची के विद्वानो मे फूट पड़ गई है। परन्तु तुम आश्चर्य से विभ्रात हो जाओगी इसी से मैने तुमसे कहा नही था। यादवप्रकाश का पाण्डित्य जब तर्क की तुला पर चढ़ा तब वह तूल की भाँति हल्का हो गया। देवी! गुड़ को देख कर ईख यदि ईर्ष्या करे कि मुझ मे से निकल कर भी इसका मूल्य अधिक है, तो क्या वह कोई न्याय है?

कान्तिमती : मै नही जानती। इस सबको यदि तुम ठीक कहते हो तो तुम पर इसका उत्तरदायित्व है। मेरा पुत्र अभी अबोध है।

केशव : (हँसकर) तो देवी! यों ही सही। मैने भी थोड़ा-बहुत पढा ही है। परम विद्वान नही हूँ तो क्या, अच्छा-बुरा तो पहचान ही लेता हूँ। पुत्र!

रामानुजः (पाँव पर गिरकर) पिता! मेरे आदि गुरु! आपने मेरे नेत्र खोल दिये। मेरे सामने का अधकार दूर हो गया। मै समझता था मैंने कोई घोर पाप कर दिया है, तर्क की क्षीण शक्ति के तन्तु पकड़ कर भूल रहा था। डरता था, वह तन्तु न जाने कब धोखा दे जाये, परन्तु आपने मेरा हाथ पकड़ लिया।

केशव : पुत्र! उस सबको कभी स्वीकार मत करो जिसे बुद्धि स्वीकार नही करे। एक दिन यतिराज शंकर ने जब प्रकाण्ड मेधावी मण्डन मिश्र को ललकारा था, तब उनके अपने शिष्यो मे भी एक भय समा

गया था। वे चाहते थे कि मिश्र को बचा कर निकल जायें। परन्तु यतिराज ने स्वीकार नही किया। वे विजयी हुए। आज तेरे सामने गुरु यादवप्रकाश उत्तर न दे सके, तो उन्होंने तुझे दबाने का यत्न किया। कान्तिमती!

कान्तिमती : स्वामी!

केशव : जानती हो तुम्हारा पुत्र क्यो नहीं दबा?

कान्तिमती : मै भी तो सुनूँ?

केशव : इस कुल की परम्परा यही है, कान्तिमती! इस कुल की परम्परा यही है।

कान्तिमती : (माथा ठोककर) वरदराज! इन पिता-पुत्र को सद्-बुद्धि दे। मै स्त्री हूँ, क्या करूँ!

[पटाक्षेप]

दृश्य ५

[घर। वेदनायकी बैठी गा रही है।]

गीत

झूले कदम्ब की डाल
कोयलिया बोले फिर फिर बोले रे
पिउ पिउ सुने पहाड़ पुलक रोमाञ्चित होवे होवे रे
चलता पथिक ठिठक कर देखे, रह रह रोवे रोवे रे
रोवे पावस, रक्त अश्रु-सी, बीरबधूटी बिखरे री
कानन मे से धार उमड़ कर पंकिल हहरे हहरे री
तब मै हँस दूँ, देख मुझे तब बादल काँपे काँपे रे
एक श्वाँस में यह समस्त ऊष्मा ले साधे साधे रे,
झूले कदम्ब की डाल
कोयलिया बोले फिर फिर बोले रे

[गीत समाप्त करके वेदनायकी उठ कर दर्पण में मुख देखती है। रामानुज प्रवेश करके खड़ा रहता है और विमुग्ध दृष्टि से देखता रहता है।]

वेदनायकी : तुम कब से सुन रहे हो ?

रामानुज : मेरे प्राणों मे एक ऐसा सगीत है जो न कभी रुकता है और न कभी रुक ही सकेगा।

वेदनायकी . सदा ही ऐसी बात करते हो जो मेरी समझ मे नहीं आती ।

रामानुज : वेदनायकी, मुझे गुरु ने अपनी पाठशाला से निकाल दिया है।

वेदनायकी : चलो, अच्छा ही हुआ। दिन-रात पढ़ते रहते हो। तुम्हे घर रहने का अवकाश ही नही मिलता था। अब कम से कम यही रहा करोगे।

रामानुज : तुम्हे इस बात को पूछने की भी चिंता नही हुई कि ऐसा क्यो हुआ ?

वेदनायकी : पूछना क्या है उसमे ? जैसे मुझे उपेक्षा से रखते हो, ऐसे ही गुरु की भी उपेक्षा की होगी। मेरा बस चलता नही, चुप रहती हूँ। गुरु का बस चला, उन्होंने दण्ड दे दिया।

रामानुज : मै तुम्हारी क्या उपेक्षा करता हूँ, वेदनायकी ? मुझ पर इतनी आज्ञा चलाती तो हो। और क्या दण्ड देना चाहती हो ?

वेदनायकी : तो मैं तुम्हे एक भार सी दिखाई देती हूँ ?

रामानुज : तेरी बुद्धि निरन्तर प्रहार करने वाले लौह फलक की भाँति कुण्ठित हो गई है।

वेदनायकी : पत्थर पर प्रहार करती रही हूँ न ? यही यदि भाग्य में था, तो उसे सहर्ष स्वीकार भी नही कर लूँ ?

[कुरेश और गोविंद का प्रवेश।]

कुरेश · तो भाभी का क्रोध जाग रहा है ?

[वेदनायकी मुस्करा कर सिर झुका लेती है ।]

गोविंद : रामानुज !

रामानुज : गोविंद !

गोविंद : मै प्रयाग जा रहा हूँ । पतितपावन सगम में स्नान करके मै उत्तर के आश्रमस्थलो मे यात्रा करके लौटूंगा ।

रामानुज : तुम अकेले जाओगे ?

गोविंद : नही, भइया ! यात्रा के लिये एक नही, अनेक साथी पथ मे मिल जाते हैं ।

रामानुज : मै भी चलूँगा गोविंद । मै भी तुम्हारे साथ चलूँगा ।

वेदनायकी : प्रयाग ! विंध्य का भयानक वन मार्ग मे पड़ता है न ?

गोविंद : (हँसकर) तो मेरे लिये क्या है । एकाकी जीवन है । यह सब तुम रामानुज के लिये सोचो ।

वेदनायकी : सोचकर भी क्या होगा ! जब कोई दूर रहना चाहता है तो बलात् रोकने से कभी नही रुकता ।

गोविंद : मै जाता हूँ, रामानुज । चलो कुरेश ।

[दोनों का प्रस्थान । रामानुज चितामग्न खड़ा रहता है । वेदनायकी उदास सी पृथ्वी की ओर देखती रहती है ।]

रामानुज : तुम रो रही हो वेदनायकी ।

[वह रो पड़ती है ।]

वेदनायकी : रोने का मुझे अभ्यास नही है, पर तुम मुझे ऐसे ही रुलाया करते हो ।

रामानुज : यात्रा को कौन नही जाता ? मुझे विश्वास है कि माता-पिता सुनकर प्रसन्न ही होंगे । एक तुम हो जो रोती हो ।

वेदनायकी : नही रोकूँगी । बस ! जहाँ जी में आये चले जाओ । यदि मै तुम्हारे पथ मे बाधा बनूँ तो कभी मेरा मुख भी न देखना ।

रामानुज : वेदनायकी !

वेदनायकी : किन्तु मुझे वचन देकर जाओ कि कहीं भी ऐसे स्थान पर नहीं जाओगे जहाँ प्राणों का भय हो।

[कान्तिमती प्रवेश करती है।]

कान्तिमती : कह पुत्र ! कुलवधू की याचना हुई है। प्रतिज्ञा कर। जिस शृङ्खला को तेरे पाँव में डाल कर हम अपने को निश्चित कर बैठे थे, जब वही तुझे स्वतंत्र कर रही है तो उसे उसका प्रतिदान देकर ही आगे जा।

रामानुज : प्रतिज्ञा करता हूँ माँ !

[केशव सोमयाजी का प्रवेश।]

रामानुज : (पितृपाद में नत हो) पूज्य पिता ! आज्ञा दें ! मैं गोविंद के साथ प्रयाग जाना चाहता हूँ।

केशव : जाओ वत्स ! वरदराज तुम्हारा मंगल करें। कल्याण हो।

[पटाक्षेप]

दृश्य ६

[यादवप्रकाश की पाठशाला।]

यादवप्रकाश : अज्ञान ही अपरिमित आकांक्षाओं को जन्म देता है।

१ विद्यार्थी : जैसे रामानुज अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने लगा था !

यादवप्रकाश : ठीक। ऐसे ही।

२ विद्यार्थी : देव ! वह फिर आये नहीं।

१ विद्यार्थी : कहते हैं उनके आचरण से उनके पिता अत्यंत प्रसन्न हुए।

यादवप्रकाश : उसकी बुद्धि जरा ने नष्ट कर दी है तभी वह असत् और सत् के भेद को भूल गया है। ऐसे पुत्र को पाकर उसके पितर सदा

ही रौरव में दु:ख झेलते रहेगे। ससार में सर्वश्रेष्ठ क्या है बता सकते हो ?

२ विद्यार्थी : सद्गुरोः सद्गुरो: !

यादवप्रकाश : बिल्कुल ठीक ! उस गुरु से विरोध करने वाला क्या कभी सुखी रह सकता है ? जो बीज अपने को विशाल वृक्ष के रूप में परिणत करना चाहता है उसे भी धरती को फाड़ कर निकलने की शक्ति तभी प्राप्त होती है जब वह अपने को दो टूक कर लेता है। जिसने जीवन का अनुभव नही किया यदि वह केवल वायु के समान झीना तर्क करे तो क्या वह समान रूप से अधिकारी हो सकता है ? वत्स ! उसका तर्क जब जटिल होने लगता है तब उसे अपने ही विरोधो के झझावात से टकराना पड़ता है। वह उससे जीत सकता है ?

१ विद्यार्थी : कभी नही, कभी, नही।

[कुरेश का प्रवेश।]

कुरेश : प्रणाम, गुरुदेव !

यादवप्रकाश : आओ वत्स ! ठीक समय पर आये। अभी-अभी रामनुज की ही बात चल रही थी।

कुरेश : रामानुज ? वह तो प्रयाग जा रहा है।

यादवप्रकाश : प्रयाग ? उत्तर देश की ओर ! क्यों ?

कुरेश : देव ! जीवन के अनेक अनुभवों की प्राप्ति के लिये। अपनी अपूर्णता को दूर करने के लिये।

यादवप्रकाश : उसकी जड़ता निरतर उद्दाम होती जा रही है, कुरेश ! वह उत्तर जा रहा है ? इतना अहकार !

कुरेश : देव ! आप क्रुद्ध हैं ?

यादवप्रकाश : क्रुद्ध ? वत्स ! उसको दण्ड मिलना चाहिये।

१ विद्यार्थी : मै प्रस्तुत हूँ देव ! आज्ञा दें।

२ विद्यार्थी : आज्ञा शिरोधार्य है प्रभु। मै भी प्रस्तुत हूँ।

कुरेश : किंतु प्रभु ! क्या होगा उसका दण्ड !

यादवप्रकाश : (हँस कर) उसके लिये एक ही दण्ड है कुरेश ! गुरुद्रोह का अंत क्या है, जानते हो ?

कुरेश : क्या देव !

यादवप्रकाश : मृत्यु !

कुरेश : मृत्यु !!

यादवप्रकाश : कुरेश तू मेरा प्रिय शिष्य है, मुझे तुझ पर अत्यंत विश्वास है। यह कार्य तू ही कर। गुरु के लिये कुछ भी पाप नहीं है।

कुरेश : किंतु देव ! यदि किसी को ज्ञात हो गया तो ?

१ विद्यार्थी : ज्ञात कैसे हो जायेगा ? कोई खेल है ? मै तो इस कार्य को चुटकी बजा कर पूर्ण कर सकता हूँ।

२ विद्यार्थी : देव ! कुरेश इस कार्य को नही कर सकता। वह भयभीत है। इस कार्य का उत्तरदायित्व हमी पर डालिये।

यादवप्रकाश : सावधान ! किसी को भी ज्ञात न हो। मृत्यु विकराल है, यदि उसके रहस्य के उद्घटित हो जाने की सभावना है। शत्रु के अंत के लिये, कोई भी व्यवस्था श्रेष्ठ है। उसमे पीछे हट जाना कायरता का नाम है।

दोनों विद्यार्थी : आज्ञा दे प्रभु !

यादवप्रकाश : जाओ वत्स !

[दोनों का गर्व से प्रस्थान।]

कुरेश : देव ! रामानुज मेधावी था। उसका इतना गुरुतर अपराध क्या था ? क्या कोई छोटा दण्ड उसके लिये उचित नही होगा ?

यादवप्रकाश : शत्रु को कभी छोटा न समझना चाहिये, कुरेश ! भयभीत मत हो। तेरा गुरु जो करेगा वह ठीक ही होगा। मै सध्या करने जाता हूँ।

[प्रस्थान]

कुरेश : प्रतिहिंसा ! जहाँ कोई बस नही चलता और मनुष्य को अपने अधिकार छिनते हुये दिखाई देते हैं, तो वह सत्य और असत्य नहीं

देखता। अपने स्वार्थ की रक्षा में जघन्य से जघन्य कार्य करने को भी उद्यत हो जाता है। हत्या! रामानुज की हत्या! असभव कुरेश के रहते हुए यह असभव है।

[उठता है।]

गुरु! तुम गुरु हो? तुम्हारा अहंकार रक्तपिपासु हो गया है, पाखण्डी! जब तुम उत्तर नही दे सकते तो तुम प्रश्नकर्ता की ग्रीवा काट कर अपनी विजय की दुन्दुभी बजाना चाहते हो? और तुम समझते हो सारे संसार को अपनी राक्षसी तृष्णा के भ्रम मे डाल सकते हो? रामानुज!

[प्रस्थान। पटाक्षेप।]

अंक २

दृश्य १

[रात्रि । पथ। दोनो विद्यार्थी आते हैं]

१ विद्यार्थी : बड़ी भयानक रात है । कैसा अंधकार छा रहा है ?

२ विद्यार्थी : आदर्श बेला है मित्र ! हत्या और पिशाची निशा का ही तो शाश्वत सबंध है ।

१ विद्यार्थी : वह दूर कहीं शृगाल पुकार रहे हैं ।

[शब्द सुनाई देता है ।]

२ विद्यार्थी : सनसनाता हुआ झञ्झावात चल कर कैसी वीभत्सता व्याप्त कर रहा है, मित्र ! मरते हुए व्यक्ति का आर्तनाद इसकी सनसनाहट मे ही डूब जायगा ।

[मेघ गर्जन । बिजली काँपती है । एक भील और भीलनी का प्रवेश ।]

१ विद्यार्थी : कौन हो तुम लोग ? यहाँ क्या कर रहे हो ?

भील : भइया, बड़ा तूफान आने वाला है । हम तो यहीं रहते हैं, उधर । आप क्या कर रहे हैं ।

२ विद्यार्थी : सर्वनाश कर दिया, मूर्ख ! तुझे कहीं रहने की जगह ही नहीं मिली थी । चलो, यहाँ से चलें ।

[दोनों विद्यार्थी जाते हैं । कुरेश का प्रवेश ।]

कुरेश : हे भील !

भील . प्रभु ! आप कौन हैं ? इस तूफान मे क्यों आये हैं ?

कुरेश : तुमने यहॉ कोई दो व्यक्ति देखे थे ?

भीलनी : हॉ हॉ, दो आदमी थे । वे उधर चले गये ।

[कुरेश उधर ही चलता है । दोनो विद्यार्थी उसकी ओर झपटते हैं । वह भाग कर भील के पास आता है ।]

भील . कौन है उधर ! क्या हुआ प्रभु ?

कुरेश : **(भीलनी के पीछे छिप कर धीरे से)** सावधान ! वे घातक हैं । कही मुझे पहचान न लें । देखो मै तो जाता हूॅ । अभी इधर से दो व्यक्ति और निकलेगे । यह दोनो उन पर आक्रमण करेंगे उस समय उनकी रक्षा करना । एक का नाम रामानुज है ।

भीलनी : आप जाये । मेरा पति ऐसे दस को ठीक कर सकता है ।

[कुरेश का छिप कर प्रस्थान ।]

भीलनी : स्वामी, आज की रात कोई भयानक काण्ड होने वाला है ।

भील : नीलकठ का स्मरण करो । कोई भय नहीं है ।

[बिजली चमकती है । रामानुज और गोविंद आते हैं ।]

रामानुज : नही गोविंद ! रात का तिमिर मनुष्य के विश्वासघात से अधिक भयानक नही होता । मै उससे नही डरता ।

गोविंद : रात्रि का भीषण अधकार मनुष्य को तामसी प्रवृत्ति की ओर आकर्षित करता है, रामानुज । मनुष्य की वासना, हिंसा जो दिन के आलोक मे अपने आप को देख कर कॉप उठती है, उस सब की वीभत्सता को यह अधकार अपने कलुषित हृदय मे छिपा कर उनकी जघन्य प्रवृत्तियों को उभारने की शक्ति रखता है ।

रामानुज : केवल वे ही उस पथ पर चलते हैं जो अपने ऊपर विश्वास नही रखते । जो अपने ध्येय पर पहुॅचने के लिये नीच मार्गों को ग्रहण करते हैं ।

भील : कौन हो तुम ?

रामानुज : कौन हो तुम भाई, जो यात्रियो को इस प्रकार रोकते हो ?

भीलनी : तुम्हारा नाम क्या है ?

रामानुज : मेरा ? रामानुज !

भीलनी : महादेव ! यह तो बड़ा भोलाभाला सा दिखाई देता है ! फिर इसकी हत्या ?

गोविंद : किसकी हत्या, भिल्लनी ?

भील : अभी एक मनुष्य कह गया है कि हम तुम्हारी रक्षा करे। दो मनुष्य तुम्हारी हत्या करने को कही इस अंधकार मे छिपे हुए हैं।

रामानुज : (हँसकर) मेरी हत्या ! भिल्ल ! तुम्हारा उपकार स्मरणीय है। किंतु वेग और ताप से भरा मेघ भी महागिरि के शृंग से टकरा कर शीतल होकर बरस पड़ता है। मेरी हत्या कोई क्यों करेगा ?

गोविंद . नही रामानुज, यह सब कल्पना है। हम आगे नही बढ़ेगे। भिल्ल हमे सहायता दे सकोगे ?

रामानुज : इतना भय किसका है गोविंद ?

गोविंद : अपने सरल हृदय से उसको समझने का प्रयत्न न करो जो अपने हाथ मे खड्ग उठा कर उसका फलक देख रहा है कि कब वह उसे तुम्हारे रक्त से भिंगो सके। घातक अँधेरी रात मे भूखे हिंस्र पशु से भी क्रूर होता है क्योंकि तब उसकी आत्मा अपने को क्रोध, लोभ और जघन्यता के हाथ बेच चुकती है।

भील : प्रभु ! आप दयालु हैं। आपके प्रति कोई ऐसा कलुषित हृदय रख सकता है, यह सोच कर मेरा हृदय विक्षुब्ध हो रहा है। आप कहाँ जायँगे। मैं आपको वहीं पहुँचा दूँगा।

भीलनी : निर्भय रहें ब्राह्मण देवता ! मेरा पति ऐसे दस को ठीक कर सकता है।

रामानुज : वीर पत्नी का पति वीर ही होगा, भिल्लनी। चलो। वेदनायकी आज तेरे स्नेह ने मुझे पथ से लौटा दिया।

भीलनी · देव ! वे कौन हैं ? आपकी स्त्री ? तूफान में डर रही होंगी।

रामानुज : हाँ भिल्लनी !

भील : देव ! उधर ही तो वे घातक गये हैं। इधर से चलें, इधर से। कहाँ जायेंगे ?

गोविंद : काञ्चीपुर !

भील : तो चलें।

[वे लौटते हैं। पटाक्षेप।]

दृश्य २

घर

[रामानुज और गोविंद भींगे हुए प्रवेश करते हैं।]

रामानुज : माँ !

[कान्तिमती का प्रवेश।]

कान्तिमती : पुत्र ! यह तुझे क्या हुआ ? तुम लोग लौट क्यों आये ? इस मूसलाधार वर्षा में कही रुक क्यो न गये ?

गोविंद : वरदराज की असीम अनुकम्पा कहो, या अपने पुत्रों का भाग्य कहो, जो जीवित लौट कर आ गये।

कान्तिमती : क्यो भला ? तू क्या कह रहा है, गोविंद ?

गोविंद : मौसी ! आज हमारे पीछे हत्यारे लग गये थे।

कान्तिमती : हाय भगवान् ! कौन थे। किसी ने आक्रमण तो नहीं किया ?

रामानुज : ठहरो गोविंद ! बाहर हमारे रक्षक खडे हैं, उन्हें तो ले आओ।

[गोविंद जाता है।]

रामानुज : माँ ! घातक कौन थे, यह तो अभी तक ज्ञात नहीं हो सका।

[गोविंद लौटता है ।]

गोविंद : वहाँ तो कोई नही है । वे स्यात् चले गये ।

रामानुज : गोविंद ! कहने को संसार उन्हे नीच कहता है । पर उनमें कितनी महान् आत्मा छिपी हुई है ! इस प्रचण्ड रात मे, आँधी के झकोरों में निस्स्वार्थ, वे हमें यहाँ तक पहुँचाने आये और चले भी गये । हम उनका उपकार भी स्वीकार नही कर सके ? भगवान् ! तुम प्रत्येक मनुष्य के भीतर उपकारक बन कर छिपे हुए हो । तुम ही तो कही उसके वेश मे न थे ।

कान्तिमती : कौन था रे गोविंद !

गोविंद : मौसी एक भील था ।

कान्तिमती : क्यो रे रामानुज ! क्या तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है जो मन मे आये उसे कहता जाता है ! भील भी कही भगवान होते हैं ?

रामानुज : क्यों नही माँ ! किरात का रूप लेकर शिव आ सकते थे, तो भील मे भगवान नही हो सकता ? भगवान क्या केवल ब्राह्मणों का है ? भगवान मनुष्यमात्र का है ।

कान्तिमती : पाप शात हो, पाप शात हो ।

[कुरेश का प्रवेश । भीगा हुआ है ।]

कुरेश (आवेश में) रामानुज !

रामानुज : क्यों क्या हुआ, कुरेश !

कुरेश : तुम बच गये न ?

रामानुज : तुम इस भेद को जानते थे ?

कुरेश · मै न जानता तो आज न जाने क्या अनर्थ हो गया होता ।

कान्तिमती . कौन थे वे घातक ?

कुरेश : पूछो नही, माता ।

रामानुज : कोई भय नहीं, कुरेश । समय-समय पर मनुष्य को अपने स्वनिर्मित सत्यों को ठोकर लगती रहे तो वह अत्यत श्रेष्ठ है, क्योंकि फिर वह अपनी सीमाओ को शाश्वत समझने की जड़ता मे नहीं खो जाता ।

कुरेश : तो सुनो माता ! कभी-कभी सत्य इतना कठोर हो जाता है कि झूठ अपनी मृदुलता के कारण उसके सामने अच्छा प्रतीत होने लगता है। तुम्हारे पुत्र की हत्या करने को गुरु यादवप्रकाश ने दो गुप्त घातकों को भेजा था।

कान्तिमती : कुरेश !!!

[केशव सोमयाजी का प्रवेश।]

केशव : आश्चर्य कर रही हो देवी ! मनुष्य की ईर्ष्या का भी कोई अत है ? रामानुज सूर्य की भाँति उठ रहा है। यह उस पर प्रथम प्रहार है।

[खाँसता है। कुरेश उसे सँभालता है।]

मैं वृद्ध हूँ। वरदराज ! मुझे तुम इतना समय नही दोगे कि मैं इस बालक का भविष्य देख सकूँ, किंतु तुमसे यही प्रार्थना करता हूँ कि इस पर आने वाले सकटों से सदा इसकी रक्षा करना।

[खाँसता है।]

कान्तिमती : अरे ! तुम इस आँधी मे आ गये ? यहाँ तो ठडी हवा चल रही है ? चलो, भीतर चलो।

[दोनो का प्रस्थान। नेपथ्य में केशव के खाँसने का शब्द। कान्तिमती जाती है।]

(नेपथ्य से कान्तिमती : गोविन्द !)

गोविन्द : आया मौसी !

[प्रस्थान। वेदनायकी का प्रवेश।]

रामानुज : वेदनायकी मै लौट आया हूँ।

वेदनायकी : जानती हूँ।

[मुस्कराती है।]

गोविन्द : (प्रवेश करके) मैं वैद्य को बुलाने जाता हूँ। ऊर्ध्वश्वास चल रहा है।

रामानुज : पिता !!

[वेग से भीतर जाता है। वेदनायकी खडी रहती है। कुरेश का प्रवेश।]

कुरेश : तुम यहाँ खड़ी हो ? चुपचाप ?

वेदनायकी : अब कैसे हैं ? मुझे डर लग रहा है।

कुरेश : तुम भीतर चली जाओ।

[वेदनायकी भीतर जाती है।]

कुरेश : (बैठ कर) बडी डरावनी रात है।

[बाहर तूफ़ान चलने की आवाज आती है। नेपथ्य में कुछ मन्त्रपाठ की ध्वनि।]

ज्ञानेन तु तदज्ञान
येषा नाशितमात्मनः
तेषामादित्यवज्ज्ञान
प्रकाशयति तत्पर ।[1]

कुरेश : (खड़ा होकर) पिता !!

[नेपथ्य से फिर मत्रपाठ—]

तद्बुद्धयस्तदात्मानः
तन्निष्ठास्तत्परायणाः
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं
ज्ञान निर्धूत कल्मषाः ।[2]

---

१. परतु जिनका वह अतःकरण का अज्ञान आत्मज्ञान द्वारा विनष्ट हो गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य की भाँति उस ज्ञान को प्रकाशित करता है। श्रीमद्भागवद्गीता, ५-१६.

२. तद्रुप है जिनका मन और बुद्धि और उसी में परायण दोनों स्थित हैं वे ज्ञान से निर्धूत कल्मष परमगति को प्राप्त होते हैं। श्रीमद्-भागवतगीता ५-१७.

[कुरेश दोनों हाथों से सिर पकड़ लेता है। नेपथ्य में कुछ स्त्री-रुदनध्वनि। कहीं कुत्ता रोता है। वेदनायकी तेजी से एक दीप लाकर द्वार पर रख जाती है। कुरेश देखता है।]

कुरेश : (फटी आँखों से) भयानक !!

[नेपथ्य से]

कान्तिमती का स्वर : स्वामी !! स्वामी।

रामानुज : पिता ! पिता ! सुनिये,

श्रद्धावाननसूयश्च
शृणुयादपि यो नरः
सोऽपि मुक्तः शुभाल्लोकान्
प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।[3]

[तीव्र रुदन-ध्वनि। व्याकुल सा रामानुज बाहर आता है। द्वार का दीप बुझ जाता है।]

कुरेश : रामानुज !

रामानुज : पिता……

कुरेश : धैर्य धरो रामानुज। धैर्य धारण करो। एक दिन सबको यही दिन देखना पड़ता है।

[नेपथ्य में फिर स्त्री-रुदन। पटाक्षेप।]

दृश्य ३

[घर। रामनुज उदास बैठा है।]

वेदनायकी : (प्रवेश करके) स्वामी !

रामानुज : (चौंककर) कौन ?

---

३. जो श्रद्धामय, दोषहीन पुरुष गीता का श्रवणमात्र भी करेगा, वह पापमुक्त, श्रेष्ठ लोक को प्राप्त होगा। श्रीमद्भागवद्गीता, १८-७१.

वेद्नायकी : अभी तक उदास बैठे हो। देखते नही, माँ का हृदय टूट गया है। तुम भी यदि इस प्रकार साहस हार जाओगे तो इस नौका को पार कौन लगाएगा।

रामानुज : ठीक कहती हो, वेदनायकी। कर्म मे लोलुप ब्राह्मणा का आचार-व्यवहार देखकर मुझे अत्यत क्लेश हुआ।

वेद्नायकी : वह कौन नहीं करता। मेरे पिता के समय मेरे भाइयों ने तो स्पष्ट ही झगड़ा कर दिया था। पर तुम वह सब नही कर सकते। उसके लिये साहस की आवश्यकता है।

[नेपथ्य से पुकार आती है—वेद्भ्रष्ट ! वेद्भ्रष्ट !!]

रामानुज : यह कौन पुकार रहा है ?

वेद्नायकी : होगा कोई चमार !

रामानुज : नही वेदनायकी ! यह स्वर अत्यत करुण है। यह कहीं मुरुगन तो नही है ?

वेद्नायकी : तो क्या हुआ ?

[नेपथ्य में एक स्त्री का करुण चीत्कार—ब्राह्मणों ! लो ! तुम जिस पथ पर रहते हो वहाँ हमें जाने का भी अधिकार नहीं है। जिसके लिये वह नीच चमार घर जल्दी पहुँचने के लिये बार-बार पुकार कर वेद्भ्रष्ट वेद्भ्रष्ट कह कर प्रार्थना कर रहा था कि राह छोड़ दो, मुझे जाने दो, वह कारण ही नष्ट हो गया। यह लो उसका बच्चा मर चुका है।]

रामानुज : (खडे होकर) वेदनायकी ! यह अत्याचार है। क्या वह मनुष्य नहीं था कि उसे ब्राह्मणो ने अपने रहते हुए पथ पर चलने का अधिकार भी नहीं दिया। इतना दंभ कि परयन* की छाया पड़ने से भी ब्राह्मण अपवित्र हो जाता है ?

वेद्नायकी : तुम्हें मेरी शपथ है। बाहर न जाओ।

[नेपथ्य में मार-पीट का शब्द । चीत्कार ।]

रामानुज : ब्राह्मण उस चमार और उसकी स्त्री को मार-मार कर अब अग्रहार के बाहर निकाल रहे हैं।

वेदनायकी : निकाल लेने दो, तुम्हे क्या ? तुमने क्या सारे ससार का ठेका लिया है ? शाश्वत से यही होता आया है। तुम्हारी आत्मा कैसे चमारो को देखकर घृणा नहीं करती, मुझे इसी का आश्चर्य है। अत्यज* हैं।

रामानुज : अद्भुत है तुम्हारा न्याय, वेदनायकी। तुरुक† और क्रिस्तान घर घर में प्रचार कर रहे हैं। दक्षिणात्य के कई ब्राह्मण उनसे समान भाव से मिलते हैं। और यह अत्यज हैं ! यह तो विष्णु के चरणों से जन्मे हैं !

[कान्तिमती का प्रवेश ।]

कान्तिमती : अरे तू अभी यही खड़ा है, रामानुज। देख तो द्वार पर कोई तेजस्वी अतिथि आये हैं !

रामानुज . मै तो इस कोलाहल मे सुन ही नहीं सका।

[बाहर प्रस्थान ।]

कान्तिमती : वेदनायकी ! अब मै बूढी हुई, अब मुझसे घर का काम नहीं होता। तू ही सॅभाल।

वेदनायकी : अब तक मै कौन हाथ पर हाथ धरे बैठी रहती थी मॉ ! मै तो सब करूँ, पर नया गृहस्वामी तो गृहस्थी से ही उदास है।

कान्तिमती : बेटी ! पिता पुत्र के ऊपर एक बहुत बड़े छत्र के समान होता है। जब वह छत्र टूट जाता है तब पुत्र की ऑखें अपने सिर पर विशाल आकाश जैसे उत्तरदायित्व का प्रसार देखकर मिच जाती हैं। उस समय स्नेह और आत्मविश्वास का आदान-प्रदान कर स्त्रियाँ ही

---

* अस्पृश्य।

†तुर्क दक्षिण में मुसलमान का पर्याय—प्रचलित रूप तुलुक।

घर को सँभालने की शक्ति पुरुष को प्रदान करती है। यही कुलवधुओं की परम्परा है बेटी।

[रामानुज और उसके साथ महापूर्ण का प्रवेश।

रामानुज : इधर, अतिथिश्रेष्ठ। इधर! माँ! आचार्य आलवन्दार यामुनामुनि के प्रसिद्ध शिष्य महापूर्ण स्वामी!

कान्तिमती : वरदराज! (हाथ जोड़ कर) मेरे इस पितृहीन पुत्र की ऐसे ही रक्षा करो भगवान्! (महापूर्ण से) देव! स्वागत है। मेरा बालक अबोध है। उसे पथ दिखाइये।

महापूर्ण : पुत्र ज्ञान की कोई भी सीमा पार कर जाये, पर पिता पुत्र को छोटा ही समझता है और मातृ ममता तो बाह्योन्नति पर ध्यान ही नहीं देती। वह तो अपने पुत्र की महत्ता को कहना ही नहीं चाहती क्योंकि पुत्र को देख कर उसके उस समय की स्मृति ही उसे आती है, जब वह घुटनों पर चलता था। (हँसता है)

रामानुज : देव, आसन ग्रहण करें।

[महापूर्ण बैठते हैं।]

महापूर्ण : तुम धन्य हो देवी! जो तुमने ऐसे पुत्र को जन्म दिया। आचार्य एक बार पहले भी श्रीरंगम् से आकर गुप्त रूप से तुम्हारे पुत्र को उसकी ज्ञान चर्चा सुन कर देख गये हैं।

[कान्तिमती भक्ति-गद्गद होकर दण्डवत् करती है।]

कान्तिमती : बारह वर्ष की आयु मे जिन योगीन्द्र नाथमुनि के पौत्र यामुनाचार्य ने कोलाहल जैसे पंडित को पराजित कर पाण्ड्य देश का आधा राज्य जीत लिया था और स्वयं ही जिसे त्याग करके वे श्रीरङ्गनाथ की उपासना में लग गये, वे मेरे पुत्र पर कृपा कर रहे हैं, कान्तिमती, तू धन्य है।

[गाती है]

नमो नमो वाङ् मनसाति भूमये
नमो नमो वाङ्मनसैकभूमये
नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये
नमो नमोऽनन्तदयैकसिन्धवे !
न धर्मनिष्ठोस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमास्त्वच्चरणारविन्दे
अकिंचनोऽनन्य गतिः शरण्य
त्वत्पादमूलं शरण प्रपद्ये ।[४]

महापूर्ण : जननी ! तू धन्य है । तेरी गुरुभक्ति असीम है । गुरुदेव ! आपने ही तो कहा है, हे महेश्वर ! यदि आप मुझे अपने पास से दूर हटाये तो भी मै आपके चरण कमलो को छोड़ने का साहस नही कर सकता । क्योंकि माता यदि क्रुद्ध होकर गोदी से अलग भी कर दे तो भी दुधमुहाँ माँ के चरणों को छोड़ना नही चाहता । माँ ! मै भीख माँगने आया हूँ । आलवन्दार ने अतिम समय जानकर तुम्हारे पुत्र को बुलाया है ।

कान्तिमती : ले जाये, अतिथि देवता ! किन्तु अक्रूर की भाँति न ले जाना, जो मेरा कृष्ण मथुरा जाकर इस वृन्दावन को भूल ही जाये और मै यशोदा की भाँति प्रतीक्षा करती हुई प्रातःकाल कौओ को उड़ाया करूँ । मेरे जीवन का एक यही तो सहारा है ।

---

४. मन-वाणी के अगोचर किंतु भक्तों के एकमात्र आधार, आपको मेरा प्रणाम है । देश, काल, वस्तुकृत परिच्छेद से रहित, परमैश्वर्यवान्, दया के सिंधु, आपको बारम्बार नमस्कार है । मै न धर्मनिष्ठ हूँ, न आत्मज्ञानी, न आपके चरण कमलों मे ही मेरी भक्ति स्थिर रहती है । एक अकिंचन हूँ । आपके अतिरिक्त मेरा कोई सहारा नही । अतः आपके शरणदायक चरणो मे आ गिरा हूँ । यामुनाचार्यकृत स्तोत्ररत्नम् से ।

महापूर्ण स्वामी : धैर्य रखो जननी। तुम्हारा पुत्र तुम्हारा ही गौरव है। सम्राट् के मुकुट में देदीप्यमान होकर भी रत्न को देख कर सब लोग वसुधरा की ही स्तुति करते हैं।

कान्तिमती : अतिथिदेव! यह बालिका रामानुज की स्त्री है।

महापूर्ण : सौभाग्यवती हो।

[वेदनायकी दंडवत् करती है।]

महापूर्ण : केशवहारीत धर्मनिष्ठ और सदाचरण के ब्राह्मण थे। मैं उन्हे जानता था वत्स, विलंब हो रहा है। श्रीरगम् में वे सब प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

[उठते हैं।]

रामानुज : चलिये।

[दोनों का प्रस्थान।]

कान्तिमती आज रामानुज के पिता होते तो कितने प्रसन्न होते, वेदनायकी। आनन्द से रो उठे होते। उनके पुत्र को यामुनामुनि ने बुलाया है—

[विभोर होकर गाती है—]

निमज्जतोऽनन्त भवार्णवान्तर—
चिराय में कूलनिवासि लब्धः
त्वयाऽपि लब्धम् भगवन्निदानीम्—
नुत्तमम् पात्रमिदं दयायाः।[५]

[पटाक्षेप]

---

५. इस अपार भवसागर के भीतर डूबते हुए मुझे आप बहुत दिनो बाद मिले हैं। तट बन कर मिले हैं। और आपको भी दया करने योग्य सबसे बड़ा दयनीय पात्र मिल गया है, मेरा उद्धार करिये।

यामुनाचार्यकृत स्तोत्ररत्नम् से।

दृश्य ४

[श्रीरङ्गम्। घर। यामुनाचार्य शैया पर लेटे हैं। निकट ही उनका पुत्र वरदरङ्ग बैठा है। प्रकोष्ठ में उदासी छा रही है।]

यामुनामुनि : पुत्र! रामानुज आ गया?

वरदरङ्ग नही पिता! अभी नही आये।

यामुनामुनि : वरदराज! इस विशिष्टाद्वैत की डगमगाती नौका को क्या कोई कर्णधार नही मिलेगा? क्या मेरी अभिलाषाएँ यो अपूर्ण ही रह जायेंगी? पुत्र!

वरदरङ्ग : देव!

यामुनामुनि : मेरे पाँवों पर कम्बल डाल दे। वह गीत सुना दे जिसमे राम ने शबरी के बेर खाये थे।

वरदरङ्ग : पिता! शात रहे।

यामुनामुनि · (हँस कर) पुत्र! मै अपने लिये अशात नही हूँ। हे मुकुन्द! ससार मे कोई ऐसा निन्दित कर्म नही है, जिसे मैने सहस्रा बार नही किया हो, परन्तु वही मै आज पापा का कटु परिणाम भोगने के समय आपके सामने असहाय होकर रोता और चिल्लाता हूँ। मुकुन्द! तुम्हारे कोमल वशीरव को सुन कर यमुना की तरगो मे कल्लोल हो उठता था। आज तुम कुछ भी नही सुनते?

[नेपथ्य में खड़ खड़।]

यामुनामुनि : पुत्र! देख तो द्वार पर कौन है?

[वरदरङ्ग जाता है।]

यामुनामुनि : हे दाशरथि! तुम्हारे कोदड की टकार सुन कर तो महासमुद्र को क्षोभ हो आया था। आज यह यम मुझसे कहता है, जल्दी चल, जल्दी चल। नही यमराज, मुझे थोड़ा काम है। मेरे जीवन की तीन अभिलाषाएँ अभी तक अधूरी ही रह गई हैं।

वरदरङ्ग · (प्रवेश करके) वहाँ .. .. .

यामुनामुनि : रामानुज है न ? महापूर्ण उसे ले आया ? मै जानता था, वह अवश्य आयेगा ।

वरदरङ्ग : (धीरे से) पिता, वह केवल वायु थी । वहाँ कोई नही है ।

यामुनामुनि : कोई नही है ? आज वायु भगवान् भी उपहास कर रहे हैं, पुत्र ?

[नेपथ्य में कुछ शब्द जैसे कुछ लोग धीरे-धीरे बाते कर रहे हैं]

यामुनामुनि : देख तो पुत्र , कौन है ?

[वरदरङ्ग जाता है । यामुनामुनि देखते हैं । वरदरङ्ग आता है]

वरदरङ्ग : पिता ! शिष्य मडली है । वे सब व्याकुल होकर दर्शन करने को उत्सुक बने आये है ।

यामुनामुनि आने दो पुत्र । उन्हे भीतर आने दो ।

[वरदरङ्ग द्वार पर खड़े होकर]

वरदरङ्ग : भीतर आये ।

[शिष्यों का प्रवेश । सब प्रणाम करते हैं और अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखते हैं ।]

यामुनामुनि : (मुस्करा कर) आ गये ? आओ । आज बिदा की मागलिक बेला है । आज मै भगवान् के चरणा का सेवक, उनका सान्निध्य प्राप्त करने जा रहा हूँ, वत्सो । तुम दुख क्यो कर रहे हो । एक दिन यही दिन सबके जीवन का अत है । इसी दिन के लिये मनुष्य पाप और पुण्य करता है ।

१ शिष्य : गुरुदेव !

[चरणों पर गिरता है]

यामुनामुनि : अधीर न हो वत्स ! जीवन एक विशाल पर्वत की भाँति है। उसके उन्नत श्रृंगो को देख कर न विस्मय करो, न उसके चरणों पर खड़े होकर भयभीत हो। यह कभी न भूलो कि वह उन्नत श्रृंग इन चरणो के आधार पर ही खडे हैं। यह पर्वत एक ही है, वत्स वरद !

वरदरङ्ग : देव !

यामुनामुनि : पुत्र ! शरशैया पर पडे-पड़े भीष्म ने उत्तरायण की प्रतीक्षा की थी। उस समय गाण्डीवधन्वा धनजय ने पृथ्वी फोड़ कर जल बाहर निकाल दिया था। तू अभी तक मेरे हृदय को संतोष न दे सका।

वरदरङ्ग : पिता ! वे आ रहे होंगे।

यामुनामुनि : (आँखे मीच कर) करुणासिंधु ! मैने जीवन मे ऐसा क्या पाप किया था कि तुम्हारा संदेश भी मै नही पहुँचा सका !

[गाते हैं।]

पल्लाण्ड पल्लाण्ड पल्लाइरत्ताण्ड
पलहोडिन्रायरम्
मल्लाण्डितिन्नोन् मणिवन्नान्
उनसेवऽडिसेव्वितिरुक्काप ![६]

हे परमपुरुष ! मुझ अपवित्र, उद्दण्ड, निष्ठुर और निर्लज्ज को धिक्कार है कि स्वेच्छाचारी होकर भी आपका पार्षद होने की इच्छा करता हूँ। इस पार्षदभाव को प्राप्त करना तो दुर्लभ है। योगीन्द्रों के अग्रगण्य, ब्रह्मा, शिव और सनकादिक भी सोच भी नहीं पाते।

---

[६] तू शाश्वत् है, तू शाश्वत् है, शाश्वत का भी शाश्वत है। अनेक कोटि, शत, सहस्र का तू अपरम्पार ही पालन कर। हे प्रभु ! सब तेरे चरणो में गिरे हैं। आशीर्वाद दे।

तमिल ग्रथ 'नालायरम्' का प्रारम्भ ईश्वरस्तुति।

[मृत्यु । सब बैठ कर सिर झुका लेते हैं। नेपथ्य में—गुरुदेव ! गुरुदेव !]

वरदरङ्ग : आ गये ? तब आये हो जब गुरुदेव परमपिता के समीप चले गये।

[रामानुज और महापूर्ण स्वामी का प्रवेश।]

वरदरङ्ग: शात रहो बन्धुओं। पिता समाधिस्थ हैं।

महापूर्ण : गुरुदेव ! आपने प्रतीक्षा भी नही की। रामानुज तो सुनते ही चल पड़ा। आपके पवित्र मुख की वाणी भी नही सुन सका यह अभागा ?

रामानुज (शव के पास बैठकर) गुरुदेव ! एक क्षण यदि आप नयन खाल सकें तो मै अपना जीवन बलि दे सकता हूँ।

महापूर्ण : रामानुज ! यदि ससार मे यही हो पाता तो आज इतनी वेदना ही क्या होती ?

रामानुज · भगवान् ! यह तुमने इतना अन्याय क्यो किया ? क्या मेरे आने तक भी तुमसे धैर्य नही धारण किया गया ? तुम ग्राह के मुख से गज को बचा सकते थे, परन्तु इस महान् आत्मा के लिये तुम इतने विह्वल हो उठे ?

बरदरङ्ग · अब आये हो रामानुज ? तुम्हे बुला-बुला कर उनका कठ सूख गया। जब तक चेतना रही, आँखे द्वार की ओर ही लगी रही, रामानुज आया ? आया रामानुज, परन्तु तुम नही आये। आये भी हो तो इस समय .....

रामानुज : (व्याकुल स्वर से) गुरुदेव ! इस पाप के लिये मुझे युगातर तक यातनाओं का अचलायन अपने शीश पर धर कर डोलना पड़े।

[अचानक देख कर।]

अरे ! महायोगिराज की यह तीन उँगलियाँ बद क्यों हैं ?

वरदरङ्ग : रामानुज ! मरते समय तक वे अपनी अभिलाषाओ को बार-बार गिनते रहे थे । वे अपूर्ण इच्छाएँ मृत्यु को भी हरा कर दिखाई दे रही है । मनुष्य की गरिमा अपनी अतृप्ति के बल पर परम्परा का गौरव माँग रही है, जैसे दीपक से दीपक ने पुकार कर कहा है कि मुझे ज्योति दे, मुझे ज्योति दे.. ...

रामानुज : ठहरो 'वरदरङ्ग ! आचार्य की वे तीन अभिलाषाएँ क्या थी ?

वरदरङ्ग: कठिन कार्य है बन्धु ! ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखना, सुल्तान के यहाँ से शल्वपिल्लै[७] का उद्धार करना और दिग्विजयपूर्वक विशिष्टाद्वैत का प्रचार करके उनकी अभिलाषाओ को पूर्ण करना ।

रामानुज : मै प्रतिज्ञा करता हूँ । आज गुरु की इन अतिम इच्छाओं को पूर्ण करने की मै प्रतिज्ञा करता हूँ ।

महापूर्ण : रामानुज ! जानते हो, क्या कह रहे हो ? हिमालय को तूल समझना उतना कठिन नही, जितना इस सबका भार ऊपर उठा लेना ।

रामानुज : मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजीवन इसी मे रत रहूँगा । यदि मुझे किसी प्रकार की बाधा आयेगी, तो उससे मै कभी विचलित नही होऊँगा । यदि पूर्ण न कर सका, तो अपने जीवन को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये होम दूँगा ।

वरदरङ्ग : साधु बन्धु ! साधु ! पिता कहते थे, यह सारा ससार जड़ माया नही है । इसमे एक प्रेम है, इस सृष्टि मे एक आनन्द है । यह समस्त जीवन एक दारुण विषम छलना नही है, यह सत्य है ।

रामानुज : मनुष्य अपनी व्यावहारिक वेदना से ग्रस्त होकर उसी से जब समझौता करने का यत्न करता है, आगे नही सोचता, उस विषमता को दूर करने का प्रयत्न नही करता, तब वह ससार को दु.खमय कह कर

---

७ विष्णु—उत्सव मूर्त्ति ।

सृष्टि की सत्ता के सतत् प्रवाह को अंधकारमय बना देता है। मै इसमे विश्वास नही करता। मै गुरुदेव के चरणो की शपथ खाकर कहता हूँ, मै उनकी प्रतिज्ञा को पूर्ण करूँगा। वरदरङ्ग ! गुरुदेव की मुड़ी हुई उँगलियों को सीधा कर दो। उन पर से भार हटा दो।

[वरदरङ्ग उँगलियाँ सीधी करता है और रो पड़ता है।]

रामानुज : रोओ नही वरदरङ्ग। चारों ओर आलोक फैल रहा है। तुम नही देख पाते ? वह कभी नही मरते जो जीवन भर दूसरों के कल्याण मे रत रहते हैं। परम पूज्य गुरु के चरणों में प्रणाम करो। आज मृत्यु को सुना कर कह दो कि वह पराजित हो गई है। मनुष्य ने स्नेह और प्रेम की गरिमा को पहचान लिया है. अब वह दीन और कातर प्रेम-हीन होकर नहीं है, वह अपने स्नेह से विह्वल हो उठा है।

महापूर्ण स्वामी : सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन !

[पटाक्षेप।]

अङ्क ३

[विष्कंभक]

[मधुरान्तकम्]

(पथ)

रामानुज . मेरा जी उच्चाट हो गया, गोविंद। आलवन्दार के स्वर्गवास के बाद जब मै घर पहुँचा, तो सब कुछ सूनासूना सा प्रतीत हुआ। माता मुझे देख कर उदास हो गई। वेदनायकी का अवसाद बार-बार विक्षुब्ध हो उठा। किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मै कही आबद्ध क्रन्दन कर रहा हूँ। दूर, और भी दूर मुझे कही जाना है।

गोविंद · तो तुम कहाँ जाना चाहते हो, रामानुज ?

रामानुज : श्रीरङ्गम् से काची लौटकर मै सोचने लगा। महासागर के अतल गभीर उदर के समान यह सृष्टि मुझे दिशा-दिशा से आह्वान् देने लगी। मुझे उन प्राचीन तपोवनो की स्मृति हो आई, गोविद। मैंने वरदराज की शरण ली। अत मे देवराज के मदिर के देदीप्यमान पुजारी ने मुझसे कहा कि मुझे भगवान् श्रीरङ्गनाथ बुला रहे हैं।

गोविंद . भगवान् !

रामानुज : हाँ गोविद, और तब जागते, सोते और स्वप्न मे वह चतुर्भुज गरिमा मुझे इगित करने लगी। उस समय माता के नेत्र आश्चर्य से फट गये और वेदनायकी की अश्रुभरी आँखो से स्नेह झरने लगा, किन्तु जैसे वह पुकार सह्याद्रि से टकरा कर दक्षिण मे कन्याकुमारी तक

गूँजती जा रही थी और कावेरी की उत्ताल तरगे कह रही थी—रामानुज ! चल, चल, तुझे वहाँ देवता पुकार रहे हैं।

गोविंद : रामानुज ! क्या तुम पर भगवान् की अपरूप कृपा हो रही है, या तुम किसी साधु के प्रभाव मे हो। अब तक हम तुमसे विद्वत्ता की चर्चा सुनते थे। आज मै तुमसे विरक्ति की बातें सुन रहा हूँ।

रामानुज · (मुस्करा कर) यह विरक्ति है, गोविद ? आज मेरे हृदय मे नये स्नेह की धारा उमड रही है। माता के नयनो मे मैने माता सीता के नेत्रो की कल्याण महिमा का दर्शन किया है। वेदनायकी के प्रति मेरा स्नेह आज शतशत धारा में प्रवाहित हा रहा है। सपूर्ण सृष्टि मे से एक नाद उठ रहा है। वह भक्ति का नाद है, जो रोम-रोम को माधुर्य से भर रहा है। आज मेरी सकल सकीर्णता विनष्ट हो गई है गोविद, मै सबको एक नई ज्योति से स्नात देख रहा हूँ। आनन्द फूट रहा है, विह्वल होकर प्राण झूम रहे है।

गोविद . रामानुज ! मै समझ नही पा रहा हूँ। तुम क्या कह रहे हो। लगता है, जो कुछ तुम कहते हो उसका क्षीण आभास कही मेरे भीतर भी है। जैसे अगार मे से चिन्गी फूट कर अधकार मे चमक उठती है वैसे ही इस सबका इगित मात्र मुझे होता है और कुछ नही।

[महापूर्ण स्वामी का प्रवेश। साथ में पत्नी अलमेलुमङ्गा।]

महापूर्ण : मेरे भाग्य ! श्रीरङ्गम् मे रहते समय मन ने कहा, महापूर्ण ! वहाँ चल जहाँ भक्ति से व्याकुल हृदय बुला रहा है।

रामानुज : आचार्य !

[चरण स्पर्श करता है।]

महापूर्ण : वत्स ! यह मेरी अर्द्धांगिनी हैं।

अलमेलुमङ्गा · कल्याण हो पुत्र ! चिरजीव हो। स्वामी तुम्हारे ही पास काञ्ची जा रहे थे।

गोविंद : जब स्नेह होता है तो न जाने कौन से अज्ञात सहायक दोनों ओर से हृदयों को उद्वेलित करके एक दूसरे की ओर आकर्षित करने

लगते हैं। एक समुद्र की भाँति चचल हो उठता है, तो दूसरा पूर्णचद्र की भाँति अतर्निहित आलोक को अधिक से अधिक विकीर्ण करने लगता है।

महापूर्ण : गुरुदेव के महाप्रयाण के उपरात श्रीरङ्गम् सूना हो गया है। वरदरङ्ग विह्वल होकर विशाल मदिर के स्तभो की छाया मे बैठ कर पिता के रचे हुए पद गाया करता है। रामानुज! वरदराज की कृपा का कहाँ प्रारम्भ है, कहाँ अंत है, इसे कोई नही जानता। केवल वे ही जानते हैं।

रामानुज . मै नही जानता आचार्य! वही शाश्वत हास मुझे दिगतों मे व्याप्त होता हुआ प्रतीत होता है। जिधर देखता हूँ वही समवेदना प्रकट होती है। क्या मनुष्य का दु.ख वास्तव मे इतना शाश्वत है, कि वह कभी मिट ही नही सकता? मनुष्य का पाप उसके कर्मो का फल है अवश्य, परन्तु जो नये कर्म वह करता है उसका स्वामी तो वह स्वय है। क्यो न वह सद् की ओर प्रवृत्त हो?

महापूर्ण . यदि वह यही कर सके तो करुणामय की कृपा उसे कभी नही छोड़ सकती। गुरुदेव कहते थे कि मनुष्य की वेदना एक बड़ी शक्ति है। वह उसे निरन्तर ज्ञान की ओर प्रेरित करती है। क्यो है यह ज्ञान की भूख? क्योंकि मनुष्य अपना परिधियाँ और शृखलाओ को पार करके काट जाना चाहता है।

रामानुज : और कहे आचार्य, उजाला हुआ जा रहा है। मरुभूमि पर जैसे रसवर्षा होती है तो असख्य फूल मुस्कराने लगते है। अपनी शक्ति को भूल जाने वाले दादुर मे नये प्राण का सचार हो उठता है वैसे ही मेरा मन भी जाग रहा है।

महापूर्ण : जीव कृपण है, रामानुज। वह अपने दुःख और शोक मे डूबा हुआ है। वह अपनी ही व्याकुलता मे ग्रस्त है। वह भूल जाता है कि वह एक अणु है। वह पूर्णत्व को याद नही करता। वह अपने

अंशत्व की निर्बलता को देख देख कर खिन्न हुआ करता है। वह नही जानता कि वह किसका अश है।

रामानुज : वह पूर्णत्व क्या है देव ?

महापूर्ण : वह गुरुदेव कहते थे, करुणामय है। जहाँ सबकी वेदनाएँ एकाकार हो जाती हैं। वह वेदना की अनुभूति उस रक्षक के अतर्गत है। और इसीलिये जीव, ईश्वर से नित्य पृथक् है। जब जीव मुक्त हो जाता है तो वह ईश्वर का मान्निध्य प्राप्त कर लेता है, परन्तु ईश्वर भाव को वह प्राप्त नही कर लेता, रहता अश होकर भी, अलग ही है। ब्रह्म अद्वितीय है क्योंकि उसका प्रतियोगी दूसरा कोई पदार्थ नही है।

रामानुज : और कहे आचार्य ! अद्वितीय वह यों है। तब तो किसी अन्य वस्तु के अस्तित्व का निषेध नही होता ? ब्रह्म सर्वश्रेष्ठ है। यह विश्व समस्त सृष्टि उसकी एक कलामात्र है।

महापूर्ण : ठीक है रामानुज ! जगत् ब्रह्म का परिणाम है। जगत् उसकी जड़ माया नहीं है। छलना नही है। उसका बाह्यरूप है। यह भी एक सत्य है।

रामानुज : सत्य ! यदि यह ससार ही असत्य है तो जीवन की आवश्यकता ही क्या है ? परमब्रह्म कोई मनुष्य द्वेषी तो नही जो उसने केवल दु.ख देने के लिये इस सृष्टि का निर्माण किया है। दुःख तो हम परस्पर दुर्व्यवहार करने के कारण पाते हैं। वह तो लीला दिखा रहा है। ब्रह्म सबसे निर्लिप्त अवश्य है, परन्तु वह निरासक्त होकर भी ऐसा नही है आचार्य कि हमारे सुख दुःख का उससे कोई सबध न हो। वह कल्याण ज्योति है। उसका इस सबसे सबध है। वह इस सबको अच्छा बनाने की सद्प्रवृत्ति दिया करता है।

महापूर्ण : धन्य हो वत्स ! तू धन्य है।

अलमेलुमङ्गा : वत्स ! चलो। कहीं विश्राम करें।

रामानुज देवी ! क्षमा करें। मै तो भूल हो गया था। आज मधुरान्तकम् आने का भी परम हर्ष हुआ। आना सफल हो गया।

गोविद तो चलो।

रामानुज . आचार्य !

[पॉव पर गिर कर]

मुझे दीक्षा दें। गुरुदेव की अमृतवाणी की मुझे दीक्षा दें।

महापूर्ण : (गद्गद् होकर) गुरुदेव ! यह महान् कार्य आपके इस शिष्य को ही करना पडा है। मै प्रस्तुत हूँ रामानुज। चलो, वहाँ मादर मे चले। आज यह पुनीत कार्य भी पूर्ण हो।

रामानुज गुरुदेव ! आज आप मेरे गुरु हुए।

गोविंद तुम कितने गुरु बनाओगे, रामानुज !

रामानुज : सारा जीवन सीखने के लिये ही तो है, गोविद ! जो अपने से अधिक जाने उसके समुख सिर झुकाना ही श्रेयस्कर है। सद्गुरु सदैव अपने शिष्य की उन्नति के लिये उसे ऐसे पथो की ओर भेजता है जो निरन्तर बडे होते जाते है। उन्ही पर चल कर जीवन के दुर्गम कष्टा को जीतता हुआ मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है।

गोविद : चलिये आचार्य ! रामानुज की बात ने मुझे निरुत्तर कर दिया।

अलमेलुमङ्गा : वत्स, तुम्हारा कल्याणम्* हो गया ? ससार† है ?

गोविद : हॉ देवी ! रामानुज विवाहित है। चलें, उधर से चलना होगा क्योंकि इधर जलाशय है।

---

* विवाह। दक्षिण मे प्रचलित प्रयोग।

† गृहस्थी से तात्पर्य है। दूसरा प्रचलित प्रयोग।

अंक ३

दृश्य १

[काञ्चीपुरम्। रामानुज का घर। वेदनायकी पीतल का दीपक स्वच्छ करके रखती है। फिर धरती पर चावल के आटे से कोलम्[1] बनाती है। भीतर जाती है। उस समय रामानुज, महापूर्णस्वामी और अलमेलुमङ्गा का प्रवेश।]

रामानुज : माँ!

[कोई उत्तर नही। वह चौंकता है।]

रामानुज : माँ! देखो तो कौन आये हैं।

[कोई उत्तर नही। द्वार पर उदास सी वेदनायकी दिखाई देती है।]

रामानुज : क्या हुआ वेदनायकी! तुम ऐसी नीरव क्यों खड़ी हो? माँ कहाँ गई है? तुम बोलती क्या नही। द्वार पर मेरे गुरुदेव और गुरुपत्नी खड़ी हैं। तुमने अभी तक उनका अभिवादन नही किया?

[वेदनायकी दोनों को दण्डवत करती है। दोनो आशीर्वाद देते हैं।]

---

१. कोलम् : रेखाए, जिससे चित्र बन जाये, फूल इत्यादि। यह परम्परा दक्षिण मे अभी तक है। उत्तर भारत मे साँझी और बगाल मे अल्पना बनाने की प्रथा है। कोलम् मे दैनिक प्रयोग के कारण रगो का प्रयोग नही किया जाता।

वेदनायकी : **(खड़ी होकर)** मॉ नही रही ।

रामानुज : वेदनायकी !!!

वेदनायकी : वे तुम्हारा नाम ले-लेकर चली गई । उस समय कोई घर पर नही था । मैने कुरेश को बुलाया । उसी ने आकर कार्य सपन्न किया । तुम मुझे यह भी नही बता गये थे कि कहॉ जा रहे हो ? जाते समय मैने टोकना उचित न समझा । समझी थी, तुम कही निकट ही जा रहे हो । माँ जब घर लौट कर आई तो उन्हे ज्वर था । उन्होने पूछा । परन्तु पुत्र को घर का अवकाश ही कहॉ था ! उन्होने एक-एक स्थान को देखा जहॉ पुत्र को उन्हाने गोद मे खिलाया था, बार-बार पुकारा, परन्तु पुत्र नही था, नहीं आया, वे चली गई ।

[रामानुज उदास बैठ जाता है ।]

वेदनायकी : अतिम समय उन्होने कहा था मुझे दु ख है कि वह इस समय यहॉ नही है । वह मुझे दाह नही दे सकेगा **(रोती है)** । मेरा भाग्य ! किन्तु पुत्री ! पुत्र ससार के लिये चितित है । उसे कोई काम होगा, तभी तो वह चला गया है ।

अलमेलुमङ्गा : रोओ नही वेदनायकी ! रोओ नही । रोकर अपने पति को अब रुलाओ नही । धैर्य रखो ।

[परन्तु स्वय उसकी ऑखे भीग जाती हैं । रामानुज ऑखे पोछता है ।]

रामानुज : वेदनायकी, रुको नही । मॉ ने और क्या कहा था ? मुझसे कहो । जो मै न सुन सका वह तुमने सुन कर जीवन का अपार पुण्य प्राप्त किया है, यह मेरे लिये एक बहुत बड़ी सात्वना है । जिसने मुझे पहली वाणी व उच्चारण सिखाया वह नही रही । मै उसके लिये कुछ भी नही कर सका ।

महापूर्ण · वत्स ! दुःख न करो । मृत्यु मनुष्य की पराजय नही है, वह भी एक परिवर्त्तन है । तुम्हारे हृदय मे मॉ अभी जीवित हैं ।

वे परम विदुषी थी। उस दिन मैने उन्हे देखा था। वृद्धावस्था आने पर सबको एक न एक दिन जाना ही पडता है। स्वय भगवान राम को भी इस ससार से जाना पड़ा था।

अलमेलुमङ्गा : नहीं स्वामी ! मृत्यु का दु ख इतना साधारण नही होता। अपने दर्शन से भी अधिक गहन और गभीर है हृदय की ममता और स्नेह।

महापूर्ण वही तो भक्ति है, अलमेलु। भक्ति जीवन के दुःखो से उपेक्षा नही है। वह एक शक्ति है। मनुष्य ज्ञान के दभ से ऊँचा उठता चला जाता है, किन्तु वह ताड़ के वृक्ष के समान होता है। उसकी छाया मे कोई बैठ भी नही सकता। भक्ति एक विशाल वट-वृक्ष है। उसकी शाखाओ मे असख्य पक्षी अपना नीड बनाते हैं और छाया मे पाथ विश्राम करता है।

वेदनायकी : स्वामी !

रामानुज . क्या है ?

वेदनायकी : उठो ! कब तक बैठे रहोगे। स्नान करके कर्मविशेष पूर्ण करो। अपना दैनिक आराधन करके माता की शाति के लिये सकल उपचार और प्रार्थना करो। याद रखो अब तुम्हारे अतिरिक्त मेरा • इस ससार मे कोई नही है। जब मेरा विवाह हुआ था तब मै छोटी थी। माँ से झगडा होता था, परन्तु वे मुझे डाँटती थी, फिर भी उनका स्नेह अखड था। अब कोई नही रहा।

महापूर्ण स्वामी . माँ का स्नेह कभी समाप्त नही होता, वत्स ! वह मनुष्य के रोम-रोम मे मनुष्यत्व बन कर समाया रहता है। वही एक भावना है जो उसमे जीवन की कटुता और कठोरता को सह लेने की शक्ति भरता है। माता रङ्गनायकी (**भगवान विष्णु की स्त्री लक्ष्मी का दक्षिण में प्रचलित नाम**) का ही तो रूप है ससार में स्त्री। वही अथाह समुद्र मे सोये विष्णु जैसे शेषशायी पुरुष को ममता का पाठ सिखाता है।

स्त्री ही ससार मे मनुष्य को स्नेह देती है और इस विश्व से प्रेम करना सिखाती है। पुरुष व्यक्ति है, स्त्री समष्टि है। पुरुष एकान्त है, स्त्री परम्परा है। पुरुष वेदना की निर्धूम ज्वाला है, स्त्री अमृत की धारा है। भगवान की लीला भी स्त्री रूप है, रामानुज! उठो! माता के नाम का स्मरण करके अपने कल्मषो को दूर भगा दो।

[रामानुज उठता है।]

रामानुज : भीतर चले गुरुदेव!

[रामानुज, महापूर्ण और अलमेलु का भीतर जाना। वेदनायकी कुछ सोचता रहती है। रामानुज बाहर आता है।]

रामानुज : वेदनायकी, तुम मेरे कारण भयभीत हो। परतु यह अकारण भय है।

वेदनायकी : अब तो कही नही चले जाओगे?

रामानुज : नहीं, अब नही जाऊँगा। अब तो गुरुदेव यही रहेगे! मै उनसे अनुनय-विनय करके उन्हे यही रहने के लिये ले आया हूँ।

वेदनायकी : अब समझी, यहाँ तुम रहोगे, इसका कारण भी गुरुदेव का यहाँ रहना ही है।

रामानुज : तुम्हे उनका रहना पसद नही?

वेदनायकी : मुझे क्या? तुम्हारा घर है, चाहे जिसे रक्खो। मै बोलने वाली कौन? मै तो स्त्री हूँ। पुरुष स्वामी है स्त्री उसके समुख है ही क्या?

रामानुज : तुम ऐसे क्यो सोचती हो वेदनायकी। मैने कब तुम्हारा अपमान किया है, जो तुम ऐसे व्यग्य करती रहती हो।

वेदनायकी : मैने ऐसा क्या कह दिया स्वामी? ससार मे यही तो होता है, परतु स्त्री इस सबको केवल एक कारण से झेल लेती है। क्योंकि जो स्वामी होता है, वह उसका पति होता है जिस पर वह अपना सब कुछ न्योछावर कर देती है और बदले मे उसका प्रेम प्राप्त

करती है। क्या माँगती है स्त्री स्वामी? कुछ भी तो नही। सेवक की भाँति सब कुछ करके केवल स्नेह की याचना करती है। प्रेम के तादात्म्य से ही वह एक पराये को अपना बना कर उसके सुख-दुख मे अपने को मिटा देती है। मुझे दुर्भाग्य से वह भी भगवान ने नही दिया तो फिर मै क्या करूँ?

रामानुज शात रहो वेदनायकी! ऐसा न सोचो। मै मनुष्य हूँ, पत्थर नही हूँ। मुझ पर विश्वास रखो। मै गुरु-सेवा करने जाता हूँ।

[भीतर जाता है। वेदनायकी कुछ देर सोचती रहती है।]

गीत

वेदनायकी मेरे मन अचपल,
मत होना रे विकल,
सारा जीवन अँधेरा बन रह जाये न!
फूल खिले मुरझाये, ओस गिरे मिट जाये,
मेघ घिरे झर जाये, दीप जले बुझ जाये,
ऐ रे चाँदनी अजानी बन रह जाये न!
मेरे मन अचपल,
मत होना रे विकल,
सारा जीवन अँधेरा बन रह जाये न!
कही ऐसा ही न हो तेरी स्मृति मुस्काये,
मेरी वेदना के स्तर स्तर भेद चुभ जाये,
मेरे प्राण की पुकार मनुहार दुलराये,
तेरा लास मेरा पाश बन रह जाये न!
मेरे मन अचपल,
मत होना रे विकल,
सारा जीवन अँधेरा बन रह जाये न।

[रोती है। पटाक्षेप।]

दृश्य २

[यादवप्रकाश की पाठशाला]

यादवप्रकाश : यह सत्य है ?

१ विद्यार्थी : देव ! यह ऐसा सत्य है जिसे ब्रह्मा भी अस्वीकार नही कर सकता ।

२ विद्यार्थी : इसे कहते हैं छप्पर फाड़ कर देना । सुना था लक्ष्मी ही गौरव देती है, परतु अब सरस्वती भी यही काम करने लगी ।

१ विद्यार्थी : देव ! उस बार तो भील ने बचा लिया । अब यदि आज्ञा दें तो ?

यादवप्रकाश : चुप रह मूर्ख ! मुझे सोचने दे । लगता है मेरी शिक्षा से तुझ मे केवल हिंस्र प्रवृत्ति ही जाग सकी है ।

[कुरेश का प्रवेश ।]

कुरेश : प्रणाम गुरुदेव !

यादवप्रकाश . आओ कुरेश । क्या यह सत्य है कि यामुनामुनि के प्रसिद्ध शिष्य महापूर्ण स्वामी अब रामानुज के घर मे निवास करते हैं ?

कुरेश : इसमें भी कोई आश्चर्य है, गुरुदेव ! आप इतने विस्मित क्यों हैं ?

यादवप्रकाश : कुरेश मै भी सोचता हूँ क्या रामानुज इतना मेधावी है ?

कुरेश : देव ! यह तो मै नहीं जानता परतु जो सुनता हूँ वही कह सकता हूँ, गुरुदेव ! श्री महापूर्ण स्वामी ने रामानुज को वेदव्यासकृत वेदान्त सूत्रो के अर्थ के साथ-साथ तीन सहस्र गाथाओं का भी उपदेश दिया है । वे सब रामानुज को हस्तामलक समान हो गये हैं ।

यादवप्रकाश : (हठात् उठ कर) अद्भुत कुरेश ! अद्भुत !

१ विद्यार्थी : (डर कर) गुरुदेव !!

२ विद्यार्थी : यह क्या हुआ गुरुदेव !

यादवप्रकाश ' निकल जाओ धूर्त्तो ! निकल जाओ यहाँ से। तुमने मुझे सदैव पाप के पथ पर चलने की प्रेरणा दी। तुमने मेरी आँखो पर अहकार की पट्टी बाँधी। मै तुम्हारा मुँह भी नही देखना चाहता।

१ विद्यार्थी : गुरुदेव ! आपके यहाँ न रहे तो हमे स्थान ही कहाँ है ?

२ विद्यार्थी . (**पाँव पर गिर कर**) देव ! हम भूखे मर जायेगे।

यादवप्रकाश : दूर हो जाओ मेरे सामने से। कही रामानुज के विरुद्ध उमडा हुआ मेरा क्रोध, अपनी ही ग्लानि मे और कही मुँह छिपाने की जगह न पाकर, कही तुम पर ही सफल न हो जाये।

१ विद्यार्थी : सद्गुरो सद्गुरो : !

२ विद्यार्थी : चल भाई, चल (**रोता हुआ**) अब क्या करे ?

[दोनों जोर से रोते हुए जाते हैं।]

कुरेश . जय, विजय को निकाल देने से तो देव ! यह विष्णु का मन्दिर सूना हो जायगा।

यादवप्रकाश : रहने दो कुरेश, मै अपनी ही ग्लानि मे झुलसा जा रहा हूँ।

कुरेश : देव ! ऐसा आतरिक विरोध क्यों ? जलते तवे पर जल की बूँदे गिरने से तो वे बूँदे जल जाती है।

यादवप्रकाश : और यदि उस ताप से भी अधिक शीतलता हो तो ? तब कैसा भी ताप नष्ट हो जाता है।

कुरेश : देव ! ताप यदि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति हो तो ?

यादवप्रकाश : रहने दो कुरेश ! मुझे एकात मे अपने पाप का प्रायश्चित्त करने दो। मुझे चारो ओर अधकार दिखाई दे रहा है। मैने गौरव के जो खड्ग अपने स्वागत के लिए उठे देख कर अपने पाँवों के नीचे पड़े हुओ को अभिमान से कुचल दिया था, आज देख रहा हूँ कि वे समस्त खड्ग मेरे ही बध के लिये प्रस्तुत है।

कुरेश : गुरुदेव !!

यादवप्रकाश : छोड दो कुरेश ! मेरा जीवन एक अनर्गल प्रलाप था। मै यतिराज शंकर के सूर्य जैसे प्रचण्ड आलोक की प्रतिच्छाया घड़ों मे भरे पानी में देख-देख कर गर्व और अहकार से अट्टहास करके सोचता था कि ब्रह्मा ने एक सूर्य बनाया है, मैने असख्यो सूर्य बना दिये हैं। किंतु रामानुज के पाडित्य और सहिष्णुता ने एक-एक कर के मेरे वे सब कुंभ खाली कर दिये और मेरे वे समस्त माया-सूर्य खो गये है।

कुरेश : गुरुदेव ! मुझे आश्चर्य है।

यादवप्रकाश : तुम्हे किसका आश्चर्य है, कुरेश ! हिमालय के उत्तुगशिखर जब शीतकाल मे हिमस्तरो को ओढ कर अपनी जडिमा का अभिमान करते है, तब वे भूल जाते हैं कि आकाश मे केवल सूर्य दूर चला गया है। जब मेष-सक्रान्ति मे मार्त्तण्ड प्रचण्ड हो उठता है तब वह हिमगिरि पिघलने लगता है।

कुरेश . देव ! यह तो कल्याण ही हुआ। जब हिमालय पिघलता है तब ही वसुधरा पर पवित्र नदियाँ बहती है।

यादवप्रकाश : पुत्र मुझे लज्जित न कर।

कुरेश : देव ! ग्लानि का भी तो अपना मूल्य है। जब नदियाँ बहती हैं और अपने ही विक्षोभ के खार से समुद्र की भाँति वे अततोगत्वा गरजने लगती है, हाहाकार करती हैं तब वही सूर्य जो दीन होकर चला जाता है, लौट आता है और अपने स्नेह-करो से जल को खारहीन करके अपने स्नेह से उसी पर्वत को मूर्धाभिषेक कराता है। गुरुदेव ! मुझे आज्ञा दे।

यादवप्रकाश : ठहरो कुरेश ! मुझे एकात मे न छोड़ो। मेरा पाप मुझे डरा रहा है। मै चाहता हूँ सब कुछ छोड कर कही चला जाऊँ। कही दूर, जहाँ जीवन की यह तृष्णाएँ बुझ जाये। मुझे ऐसा लगता है, मै पागल हुआ जा रहा हूँ। मेरे विश्वासो की भीत एक हल्के से झोके मे ढह गई कुरेश, मै क्या करूँ ?

कुरेश : गुरुदेव ! तूफान में पडे हुए प्राणी को भगवान के अतिरिक्त और आश्रय ही क्या है ?

यादवप्रकाश : इतने कठोर न बनो पुत्र ! किन्तु सत्य है । तुम मुझे राह बता भी क्या सकते हो ? कुरेश !

कुरेश : गुरुदेव !

यादवप्रकाश : मै जाता हूँ, तुम पाठशाला को सँभालना ।

कुरेश · नही देव !

यादवप्रकाश : जाने दो मुझे पुत्र । मुझे रोक कर मेरे साथ अत्याचार न करो ।

[इसी समय दोनों विद्यार्थी आकर यादवप्रकाश के चरणों पर गिर जाते हैं ।]

१ विद्यार्थी · रामानुज की जय !

२ विद्यार्थी : रामानुज महान् है, गुरुदेव ! आप हमें चाहे जो दण्ड दे प्रभु ।

यादवप्रकाश : तुम क्या कह रहे हो ?

१ विद्यार्थी : देव, हम दोनों आपके यहाँ से निकल कर जीवन से निराश हो गये । कही खाने का ठिकाना नहीं था ।

२ विद्यार्थी : तब हमने निश्चय किया कि जाकर रामानुज के पाँव पकडें और आपकी बुराई करें और इस प्रकार अपना प्रतिशोध लें ।

१ विद्यार्थी : उसी समय रामानुज उधर से आ गये ।

२ विद्यार्थी : हमने उनके पाँव पकड़ लिये और आपकी बुराई करने लगे······

यादवप्रकाश : (क्रोध से) नीच नराधम···

१ विद्यार्थी : उस समय रामानुज ने कानों पर हाथ धर कर कहा राम राम ! स्वप्न में भी गुरु के लिये अपशब्द सुनना मेरे लिये रौरव नरक में रहने के समान है ।

यादवप्रकाश : क्या कहा उसने ?

(हठात् व्याकुल सा) उसने मेरी निदा भी नही सुनी ! यादव-प्रकाश ! जो कुछ तूने उसे सिखाया, वह सब स्वय क्यों नहीं सीखा ? कहाँ गया था तेरा ज्ञान ? मूर्ख ! गर्दभ की भाँति पुस्तकों का ढेर उठाये-उठाये घूमता फिरा। भूमिभार !! (पुकार कर) कुरेश ! मै भूमिभार हूँ।

कुरेश : गुरुदेव ! शात रहे।

यादवप्रकाश : शात रहूँ ? इस दारुण यातना मे भी शात रहूँ ! अभी तक मेरे भीतर एक पशु बडा सभ्रात बन कर पल रहा था। आज जब वह पशु बाहर निकल आया है तब वह आर्त्तनाद कर रहा है। और मै उसे देख-देखकर डर रहा हूँ कुरेश ! मुझे छोड दो। मुझे अधकार मे खो जाने दो ··

[प्रस्थान]

कुरेश : चले गये। मित्रो ! तुम्हारे पाप का प्रायश्चित यही है कि जहाँ से रामानुज की निंदा किया करते थे वही रह कर अब रामानुज की प्रशस्ति गाओ। गुरुदेव की पाठशाला का भार मै तुम पर छोडता हूँ।

(प्रस्थान। पटाक्षेप।)

दृश्य ३

[रामानुज का घर]

रामानुज : आओ भक्तप्रवर आओ।

[कुप्पन बैठता है।]

रामानुज : बहुत दिन मे मिले। इधर मै सोचता था कि कभी भगवद्चर्चा करने तुम्हे बुलाऊँ। बस उसी बार पथ पर मिले थे ?

कुप्पन : प्रभु ! उस दिन पथ पर आपकी चरणधूलि सिर पर ली थी, उसी समय से मेरे मन मे एक उल्लास सा छा गया है। प्रभु !

आपने कहा था अनन्त जगत् और जीव उन्ही का शरीर है। वही उस शरीर के आत्मा है। मै सुनता हूँ तो हृदय मे एक विभोर आनन्द सा छाये जाता है। यतिराज कहते थे यह सब माया है।

रामानुज . माया नही कुप्पन यह तो उसकी लीला है।

• **कुप्पन** · मै नही जानता देव ! यह सब तो आप जैसे श्रेष्ठ कुलों में उत्पन्न महान्‌ व्यक्ति जानते हैं। जो वेद जैसे गहन विषय का पाठ करते हैं। मै तो साधारण निकृष्ट चमार हूँ···

[वेदनायकी का प्रवेश ।]

रामानुज : देखो तो वेदनायकी । कुप्पन को जानती हो ?

कुप्पन अभी तक कभी ऐसा सौभाग्य नही हुआ।

रामानुज · भक्त हैं, भगवद्भक्ति मे काची मे ऐसे तल्लीन बहुत कम मिलेगे · ·

वेदनायकी . हूँ ! तभी तुम इन्हे ढूँढ कर ले आए हो।

[प्रस्थान]

कुप्पन . (**सकपकाया सा**) देवता ! माता क्रुद्ध हो गई !

रामानुज क्या ? क्रुद्ध होने की क्या बात थी ?

कुप्पन : देव ! मै चमार जो हूँ !

रामानुज · तिरुप्पान आलवार कौन थे, कुप्पन ? वे भी तो चमार थे। उनकी भक्ति के कारण उन्हे भक्तराजो मे स्थान मिला है और समस्त ब्राह्मणो ने इसे स्वीकार कर लिया है क्योंकि वे समर्थ थे। किंतु भगवान कृष्ण ने कहा है कि जो सब कुछ छोड कर मेरी शरण मे आता है वह मेरा हो जाता है। यही तो उनकी आज्ञा है ! शूद्र विराट् पुरुष का चरण है, तो क्या चरण को कोई अधिकार नही है ?

कुप्पन : देव ! उत्तेजित न हों। हम चमार वेदभ्रष्ट हैं। हम पूर्व जन्म के पाप के कारण ही तो इस जाति मे कष्ट प्राप्त करने को पैदा हुए हैं।

रामानुज : तब तो यह हमारा और भी अधिक कर्तव्य है कि तुम्हे अपनी इस अवस्था से मुक्ति प्राप्त करने का पथ दिखायें।

कुप्पन : वह नही हो सकता, स्वामी !

रामानुज: तो क्या गीता मिथ्या है, कुप्पन ?

कुप्पन : नारायण ! नारायण !

[दण्डवत् करता है। उठता है।]

कुप्पन . आज्ञा दे प्रभु।

[प्रस्थान। रामनुज भीतर चलता है।]

वेदनायकी : (द्वार से) ठहरे रहो, ठहरे रहो।

रामानुज : क्या ?

[वेदनायकी उत्तर नही देती। सोने को हाथ मे लेकर जल में भिगो कर रामानुज पर प्रोक्षण करती है और जहाँ कुप्पन बैठा था उस स्थान को जल से धो देती है। रामानुज चुपचाप देखता रहता है। वेदनायकी ऊबी हुई सी सीधी खड़ी होती है।]

रामानुज : यह तुम क्या कर रहो हो ?

वेदनायकी : आज तक जो कुल परम्परा से नही हुआ उसे असम्भव ही बनाये रखने का यत्न कर रही हूँ।

रामानुज : तुम्हारा तात्पय ?

वेदनायकी · कैसे पूछते हैं जैसे जानते ही नही। वह चमार नही था ?

रामानुज : था तो, किंतु भक्त था।

वेदनायकी : भक्त था !! भक्त था तो ब्राह्मण के घर बैठने का भी अधिकारी हो गया वह नीच ?

रामानुज : उसे नीच कह कर तम मुझे गाली दे रही हो,

वेदनायकी। भगवान का भक्त केवल भक्त होता है। वह कभी हीन नही हो सकता। तुम उसका अपमान नही कर सकतीं।

वेदनायकी . हाय भगवान! क्या कहते हैं! एक तो अधर्म, फिर मुझ पर ही क्रोध भी? समझते होगे मेरा कोई नही है। अभी तो मेरा भाई जीवित है!

रामानुज : मैने कब कहा तुम्हारा भाई जीवित नही।

वेदनायकी : उस बिचारे को क्यों भला-बुरा कहते हो!

रामानुज : वेदनायकी! मुझे आश्चर्य है। बाहर सब लोग मेरी बात को इतने ध्यान से सुनते हैं, एक तुम्ही हो जो मुझे कभी नही सुनतीं।

वेदनायकी : बाहरवालो का क्या बिगडता है। हमारे घर मे चमार हमारे साथ भोजन भी करे तो उनका तो कुछ नही बिगड़ेगा न? झट से सब एक होकर हमे जातिभ्रष्ट कर देगे। लोगा को दूसरा की हानि मे आनन्द आता है।

रामानुज : तो भय ही तुम्हारे जीवन और धर्म का आधार बन गया है?

वेदनायकी : मै नही जानती। तुम कुछ भी कह सकते हो। मैने जीवन मे एक तुम्हे ही अपना आधार बनाया है। पिता ने अग्नि की प्रदक्षिणा करवा के तुम्हारे हाथ मे मेरा हाथ सौंप दिया। तब से तुम्ही को ईश्वर मानती चली आ रही हूँ। पर धर्म मुझे तुम से भी प्यारा है, स्वामी! सनातन नियमों को मै नही छोड सकती।

रामानुज : चाहे वे असत्य ही क्यो न हों?

वेदनायकी : वे असत्य हो ही नही सकते। कहना नही चाहिये, परन्तु तुम्हारे कल्याण के लिये कहे बिना भी नही रहा जाता। ज्ञान का उपयोग करना सीखो। मै तो समझी थी गुरु के निकाल देने पर तुम कुछ घर मे मन लगाओगे, सो तो कुछ नही हुआ।

[महापूर्ण और अलमेलु का प्रवेश।]

महापूर्ण : क्या हुआ वत्स?

रामानुज : (**मुस्करा कर**) कुछ नही देव ! हम लोग ऐसे ही बाते कर रहे थे ।

अलमेलु : मुझे लगता है, पति-पत्नी मे झगडा हो रहा था ।

वेदनायकी : संसार मे सब यही तो चाहते हैं । भगवान उनकी इच्छा पूरी न होने दें ।

[**भीतर प्रस्थान । सब आश्चर्य से देखते हैं ।**]

रामानुज . स्वागत प्रभु ! वह नादान है । उसकी बात पर ध्यान न दें । वह अभी विक्षुब्ध हो गई है ।

महापूर्ण : क्यो ? क्या हुआ ?

रामानुज : देव ! भक्तप्रवर कुप्पन आये थे । वह मनुष्य की आत्मा को नही देखती, काया को देखती है । आप भीतर चले । मै तनिक हाट की ओर हो आता हूँ ।

महापूर्ण : तो रामानुज, निकट के उपवन से पहले मुझे तुलसीदल लाकर देते जाओ ।

रामानुज : जो आज्ञा ।

[**प्रस्थान**]

महापूर्ण : चलो देवी ! भीतर चलो ।

[**भीतर जाते हैं । द्वार पर एक भिखारी आता है । गले में एकतारा लटका है ।**]

भिखारी : माँ ! भिक्षा दो ।

[**कोई उत्तर नही ।**]

भिखारी : माँ ! भूखा हूँ । भोजन दो । वरदराज तुम्हारा मंगल करेंगे । पति-पुत्र का गौरव अखड रहेगा । तुम्हारे घर मे दूध-दही की नदियाँ बहती रहेगी ।

वेदनायकी : (**प्रवेश कर**) और उन नदियो मे तू मगरमच्छ बनकर पडा रहियो । कमा कर नही खा सकता ?

भिखारी : देवी ! वृद्ध··· ··

वेदनायकी : तो यहाँ क्या राजा ने अन्नसत्र खोला है ? जा जा ..

[भीतर प्रस्थान । भिखारी एकतारे पर गाने लगता है ।]

गीत

गीत अगीत बने न मुखर बन
शाश्वत प्रलय समाया रे
भूले ऋषि के नयनों में नव
वट सुंदर मुस्काया रे
एक पात पर नारायण रे
सुंदर बाल अकेला था
अरे उसी ने महाप्रलय का
भीषण प्लावन झेला था।
उसे कहो मत बालक पागल
वह ही जगत सहारा रे
धर ब्रह्माण्ड उदर में झूला
जल में जगत किनारा रे
भाम भयंकर पवन विलोड़ित
मर्मर, सिंधु, अंधेरा था
ज्योति रूप में शक्ति स्फीतलय
वह ही एक बसेरा था।

[रामानुज का प्रवेश । हाथ में तुलसीदल है ।]

रामानुज : साधु ! सन्यासी ! साधु ! जब इतने मीठे स्वर से गाते हो तो रोम-रोम पुलकित हो उठता है (**समीप बैठकर**) सन्यासी ! आसन ग्रहण करो । आज द्वार पर स्वयं नारद का सा भक्त दर्शन देने आ गया है । दीन बनकर जब प्रभु आते हैं तब उन सबको तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं जो उनकी दीनता का उपहास करता है । बैठो सन्यासी । आज भोजन करके कृतार्थ करो । वेदनायकी ! ओ वेदनायकी !!

वेदनायकी : (**प्रवेश कर**) सुन रही हूँ। ऐ ओ करके जब बुलाते हो, तब मेरे अतिरिक्त और कौन होगा (**सन्यासी को देख कर**) अरे ! तू अभी यही बैठा है ?

रामानुज ' इन्हे तो मैने ही बिठाया है।

वेदनायकी : ठीक ही है। एक से एक बढकर अतिथि लाते हो ! इन्हें नही बिठाते तो तुम्हे और मिलता ही कौन है ?

रामानुज . अच्छा, अच्छा। इन्हे भोजन कराओ, वेदनायकी।

वेदनायकी : मेरे सिर मे बडा दर्द हो रहा है। यह सब मुझसे नही हो सकेगा। मै तो भोजन बना चुकी। अब बार-बार नही बना सकती।

रामानुज ' आज मुझे तो भोजन दोगी न ?

वेदनायकी ' क्यों तुम्हारा घर है, तुम्हारा काम न करूँगी तो तुम दो मुट्ठी चावल ऐसे ही दे दोगे ?

रामानुज : तो जाओ वेदनायकी, मेरा भोजन परोस कर ले आओ, पहले अतिथि को खिलाना चाहिये।

वेदनायकी : जो कुछ करना है आप कर लो। मै यह सब नहीं कर सकती। भूखों को अन्न बाँटना, राजा का काम है, हमारा तुम्हारा नही है। अपना भोजन इसे दे दो। मेरा तुम खालो। कही भूखे न रह जाना।

भिखारी ' साधु ! रामानुज, साधु ! तुम्हारी प्रशसा सुन-सुन कर ही इस द्वार पर आया था। जो सुना था वही देखा। मेरी चिन्ता न करो।

[प्रस्थान]

रामानुज वेदनायकी ! द्वार से भिक्षुक भूखा चला गया।

वेदनायकी : तो क्या रोना प्रारंभ कर दूँ ?

रामानुज : तुम सचमुच इतनी कठोर हो, वेदनायकी ? यह तुम क्या कहा करती हो, कभी इस पर विचार किया है ?

वेदनायकी · मेरी ही कौन सोचता है, जो मै सोच-सोच कर घुला करूँ ?

[रामानुज देखता है और फिर भीतर चला जाता है। वेदनायकी रोष से पाँव पटक कर उसके पीछे जाती है।]

दृश्य ४

[घर। वेदनायकी दाल बीन रही है। अलमेलुमङ्गा बाल काढ रही है।]

अलमेलुमङ्गा : क्या कर रही है, वेदनायकी ?

वेदनायकी : अपना आँखें फोड़ रही हूँ।

अलमेलु . (**हँस कर**) ऐसे नही कहते पगली ! तेरा पति आजकल कितना उदास रहता है, यह नही देखती ?

वेदनायकी : ओह !! और मै सदा ही आनद से फूली रहती हूँ न ?

अलमेलु : उस दिन तूने उस भिक्षु को भोजन नही दिया वेदनायकी यह अच्छा नहीं किया।

वेदनायकी देती कैसे ? घर का खर्च तो मेरे हाथ मे है देवी ! वैसे ही व्यर्थ में इधर-उधर क्या कम व्यय होता है।

अलमेलु : (**चोटी बिना गूँथे हुए बाँध कर**) यह तू हमसे कहती है, वेदनायकी ?

वेदनायकी . मै तो किसी से नहीं कहती, अपने भाग्य को रोती हूँ।

अलमेलु : और कहने में कुछ बाकी रहा है क्या ?

वेदनायकी : तुम तो लगता है लड़ने को बैठी हो।

अलमेलु : अरी तो सीधे मुँह बात नही करती ! कल की लड़की जितना तेरा खाया है, उससे अधिक तो मेरे पति ने तेरे पति को ज्ञान दिया है।

वेदनायकी : बडा ज्ञान दिया है ? तभी तो उन्होंने घर का यह हाल कर दिया है। सब अपने अपने परिवार को सग लिये डोलते हैं, एक मेरा ही वह सबको भगवान का भक्त होने को मिला है, जिसे घर की चिंता करने की आवश्यकता नही पड़ती। मै न चलाऊँ यह घर, तो दो दिन में इन भक्तों और भक्तराजो का यहाँ आना बद हो जाये। खाँना मिलना बद होते ही भगवान यहाँ से कूच कर जायेंगे।

[महापूर्ण का प्रवेश।]

अलमेलु : [खड़ी होकर] सुन रहे हो क्या विष उगल रही है ?

महापूर्ण : क्या हुआ, देवी ?

वेदनायकी : देवी समझती हैं कि आपके आने पर अब उन्हें दुगना बल मिल गया है। कैसे डरा रही हैं जैसे खा ही जायेगी।

महापूर्ण : पुत्री ! यह क्या कह रही है ?

वेदनायकी : पुत्री क्या कह रही है, यही जानना है या देवी भी कुछ कह रही हैं, इस पर भी कुछ ध्यान देना है ? ससार का नियम ही यह है गुरुदेव ! पति सदैव पत्नी का पक्ष लेता है। एक द्रौपदी के पीछे तो पाडवो ने अपने भाइयो का नाश कर दिया था। वह तो एक मै ही अभागिन हूँ जो मेरे पति को मेरी तनिक भी चिंता नही।

महापूर्ण : अलमेलु ! तू इतनी विक्षुब्ध क्यों है ?

अलमेलु : मै ही विक्षुब्ध हूँ ? यह लड़की मुझसे कहती है, तू और तेरा पति यहाँ भिखारियों की तरह मेरे घर पर पडे हो। यह मै चुपचाप सुनती रहूँ ? मै यहाँ नही रहूँगी। मैं यहाँ कभी नही रहूँगी।

महापूर्ण : किंतु इस समय वत्स रामानुज भी यहाँ नही है। इसे छोड़कर कैसे चले जायें। यही समझ लो कि अपने पुत्र की स्त्री ही वाचाल है। उसने अपमान किया है तो उसे अनुभव ही क्यों करती हो ?

वेदनायकी धन्य हो ऐसे माता-पिता को जो पुत्र की कल्याण कामना मे अपने को भूले हुए हैं।

अलमेलु : सुन रहे हो ? कैसे जले पर नमक छिडकती है। मै यहॉ एक क्षण भी नही रहूँगी। मै यहॉ एक पल भी नही रहूँगी।

[रोने बैठ जाती है।]

वेदनायकी : तानक सस्वर रोओ माता ! गुरुदेव ! इतनी शीघ्रता से तुम्हारे कुचक्र मे नही फसने के।

महापूर्ण : बहुत हुआ, अलमेलु। चलो। चिरजीव रामानुज का कल्याण हो।

[अलमेलु उठ खड़ी होती है। भीतर जाती है और एक गठरी बॉध कर लाती है।]

महापूर्ण : चलो देवी। पुत्री ! सौभाग्यवती हो !

[वेदनायकी व्यंग्य से उठ कर दण्डवत् करती है। उनका प्रस्थान। वेदनायकी उठ कर अंगड़ाई लेती है।]

वेदनायकी : आज बहुत दिन बाद मेरा घर स्वच्छ हुआ। जब देखो तब इन साधु और गुरुओं ने मेरा सौभाग्य घेर रखा था। अब वे रहेगे और मै रहूँगी।

[हँसती है। गोविद का प्रवेश।]

गोविंद : गुरुदेव !

वेदनायकी : किसे पूछ रहे हो, गोविद ?

गोविंद . क्यो ? गुरुदेव कहॉ गये ?

वेदनायकी : पर्यटक का क्या गोविद। आज यहॉ हैं, कल वहॉ हैं। चले गये।

गोविंद : चले गये ? रामानुज तो कह गया था कि वह फिर उन्ही के साथ यात्रा पर जायेगा।

रामानुज : जल्दी कहो, वेदनायकी।

वेदनायकी : जानते हो यह सब मैने क्यो किया है ?

रामानुज : क्षुद्र बुद्धि के अधीन होकर !

वेदनायकी : (रोकर) बस ?

रामानुज : और भी कुछ है ?

वेदनायकी नही। जब तुम्हे मेरे हृदय का इतना ही ज्ञान है, तो जो है वह भी नही के समान है। तुम्हे मेरे ऊपर इतना भी स्नेह नहीं। एक तुम ही ससार के अकेले शिष्य हो ! तुम्हारे गुरु इतने ज्ञानी हैं, परतु अपनी स्त्री की एक बात भी नही टाल सके। तुम अपनी स्त्री की सारी इच्छाओं को रौंदकर हँसकर जा सकते हो ? तुम यही नही सोच सकते कि वेदनायकी का जो कुछ है, वह तुम हो। जो कुछ वह करती है, वह सब तुम्हे पाने के लिये करती है।

[पॉव पकड़ कर रोती है।]

तुम्हे नही जाने दूँगी मै, स्वामी ! तुम्हे नही जाने दूँगी।

रामानुज : (उठा कर) वेदनायकी ! प्रेम यदि इतना एकात है तो वह अवश्य ही अपने भीतर कहीं स्वार्थ से कुरूप हो चुका है। स्त्री और पुरुष का सबन्ध केवल अपने सबधो में ही समाप्त नही हो जाता। पति-पत्नी का एक सामाजिक कर्त्तव्य भी होता है। यदि हम उस ओर ध्यान नही देते, तो हम अपने आप से अन्याय करते हैं। जो हो गया, उसे भूल जाओ। मुझे गुरु को लौटा कर उनसे क्षमा मॉगने दो। यदि वे तुम्हे क्षमा कर देंगे तो मेरा मन हल्का हो जायेगा।

वेदनायकी : नही, वे यहॉ नही लौटेंगे। यदि वे लौटेंगे तो मै यहॉ नही रह सकूँगी।

रामानुज : क्रोध मनुष्य की सबसे बड़ी निर्बलता है। ईर्ष्या मनुष्य के प्रेम को भी घृणा मे परिवर्तित कर सकती है। तुम उत्तेजित हो रही हो,

वेदनायकी । मै तुमसे ही नही, सारे ससार से प्रेम करता हूँ । मै प्रत्येक की वेदना को अपनी वेदना समझता हूँ । केवल तुम्हारे बधनों को सहज दृष्टि से स्वीकार कर सकूँ वह निर्बलता निस्सदेह मुझमे शेष नही है । मै और आगे बढ चुका हूँ । परिवार के वे जराजीर्ण बधन मुझे मोहित नही करते जो मुझे मेरे सिद्धातों से डिगाने का प्रयत्न करते हैं ।

वेदनायकी : तो मुझे यहाँ क्यों रखते हो ? जब तुम मुझे नही चाहते, मुझसे घृणा करते हो तो मै यहाँ क्यो रहूँ ? मै अभी चली जाती हूँ ।

रामानुज : कहाँ जाओगी ?

वेदनायकी : भैया के पास ।

रामानुज : बाद मे शोक तो नही करोगी ?

वेदनायकी · नही, क्योकि तुम कभी शोक नही करोगे ।

रामानुज : मैने स्त्री को कभी बधन नही माना । यदि तुम चली जाओगी तो मै सन्यासी हो जाऊँगा ।

वेदनायकी : जो अब गुप्त रूप से हो, वही यदि प्रगट रूप से हो जाओ तो ऐसा क्या भेद हो जाएगा !

रामानुज : न जाओ वेदनायकी ! मै प्रार्थना करता हूँ ।

वेदनायकी : (**ठिठक कर**) सच कहते हो ?

रामानुज : मैने तुमसे कभी झूँठ कहा है ?

वेदनायकी : तो वचन दो, जैसे मै कहूँगी, वैसे ही मेरे बन कर रहोगे ।

रामानुज : तुमने मुझे क्या कभी किसी और स्त्री की ओर आकर्षित देखा है ?

वेदनायकी : हाय रे ! एक बार को वह भी होता तो सतोष कर लेती । तुमने तो अपनी स्त्री के प्रति भी अपना आकर्षण नही दिखाया ।

रामानुज : यह झूठ नही कहा है तुमने ?

वेदनायकी . झूठ इसमें क्या है ? दिन पर दिन तुम्हारा मन ससार से उचाट होता जा रहा है। कहाँ तक सकूँ ? मेरे रहते यह भक्त वक्त यहाँ नहीं आयेंगे ।

रामानुज ' यह कैसे हो सकता है, वेदनायकी ?

वेदनायकी : तो फिर मै यहाँ क्या करूँगी ?

रामानुज : जिस पथ पर मै चलता हूँ उस पथ पर तुम नही चल सकती ? वह परिवार का एकात सुख नही, ससार के कल्याण का मार्ग है।

वेदनायकी : नही, मै यह सब नही समझती।

रामानुज : तो जाओ, वेदनायका। रङ्गनाथ की यही इच्छा है। वे अब मेरा पथ खोल देना चाहते है।

वेदनायकी मै प्रतीक्षा करूँगी। जब मन भर जाये तो मुझे बुला लेना।

[गोविंद का प्रवेश]

गोविंद . गुरुदेव नही मिले।

वेदनायकी : अब मिल या न मिलें। मुझे मेरे घर पहुँचा दोगे ?

[गोविंद रामानुज को देखता है। रामानुज गभीर सा सोच रहा है।]

रामानुज : रङ्गनाथ, तुम यही चाहते हो ? शेषशायी ! यही है तुम्हारी इच्छा ?

वेदनायकी : देवर ! जब यह चाहे तब मुझे बुला लेना। चलो।

गोविंद : तो चलो।

[गोविंद और वेदनायकी का प्रस्थान]

रामानुज : नारायण ! तुमने यह क्या किया ? क्या सचमुच

बेला आ गई ? क्या सत्य ही अब मुझे अपने पथ पर निर्भय होकर चलना है ?

[कुरेश का प्रवेश ।]

कुरेश : क्या हुआ रामानुज ?

रामानुज : कुरेश । मुझे रामानुज मत कहो । मै सन्यासी हूँ । आज मै सन्यास धारण करूँगा ।

कुरेश : [**चौंक कर**] रामानुज !

रामानुज : (**मुस्करा कर**) नही । कुरेश ! सन्यासी !

[पटाक्षेप]

अंक ४

[विष्कभक]

[पथ]

१ नागरिक : जब से आचार्य ने सन्यास ले लिया है, तबसे उनकी शिष्य मण्डली बढती ही जा रही है।

२ नागरिक : अब क्या भय है भाई। जब घर मे स्त्री नही रहती तो भोगी के मित्र और योगी के साधुओ की भीड़ एकत्र होने लगती है।

[यादवप्रकाश का प्रवेश]

यादवप्रकाश : तुम किसी की बात कर रहे हो? या मै पागल हो गया हूँ।

१ नागरिक : यह बढी हुई दाढी, यह मैले वस्त्र, यह उलझे हुये बाल यदि तुम कहो कि तुम पागल नही हो तो तुम पर विश्वास भी कौन करेगा।

यादवप्रकाश : मै पागल हो गया हूँ न? (हँस कर) लेकिन मै पागल नहीं हूँ, मित्रो। मेरे पापो ने मुझे व्याकुल कर दिया है।

[हँसता है।]

१ नागरिक : तुम हो कौन?

यादवप्रकाश : आकाश से गिरता हुआ नक्षत्र कभी अपना नाम बताता है? हिमगिरि से गिरते हुए निर्झर का किसी ने नाम रखा है? वह तो तब होता है जब वह धारा आकर पृथ्वी पर बहने लगती

है। जब वह दूसरो के खेतो को सींचती है। तब लोग उसका नाम धरते हैं, उसके लाभ के लिये नहीं, अपने लाभ के लिये।

[हँसता है।]

२ नागरिक : तो तुम यहाँ क्यो आये हो ?

यादवप्रकाश : यहाँ क्यों आया हूँ ? पूछो मै कहाँ नहीं गया ? मैने सेतु तक जाकर समुद्र की अथाह लहरों से पूछा है तुम मुझे आत्मसात कर सकोगी ? परतु उन निर्दय लहरों ने मुझे तट पर फेंक दिया और उस समय सिंधु का हृदय घृणा से गुर्राने लगा था। तब मैने अनेक स्थानों पर भ्रमण किया, मै नैमिशारण्य तक जा पहुँचा। किंतु मन ने कहा कस्तूरी के मृग, जिस गंध से तू विह्वल होकर घूम रहा है, वह तो तेरी नाभि मे बसी है। क्या करता ? मै यहीं लौटा आया।

[हँसता है। दोनों नागरिक चले जाते हैं। पटाक्षेप]

—:o:—

अंक ४

दृश्य १

[सन्यासी वेष में रामानुज बैठे उपदेश दे रहे हैं। कुछ शिष्य सामने बैठे हैं। कुरेश और गोविंद भी हैं।]

रामानुज : ज्ञान मुक्ति का साधन नहीं है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से अविद्या की निवृत्ति नहीं हो सकती। बधन परमार्थिक है तो इस प्रकार ज्ञान से उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती।

कुरेश आचार्य्य ! तब मुक्ति के पथ के लिये श्रुति तो आवश्यक नहीं ?

रामानुज : बेद ही आधार है, कुरेश। शास्त्र भी उसका प्रतिपादक है। शास्त्र सगुण और सविशेष ब्रह्म का प्रतिपादन करता है। जगत जड़ है परतु सत् है। निर्विशेष ब्रह्म निष्प्रयोजन है।

गोविंद : वेद ज्ञान देता है, आचार्य। किंतु उसके अधिकारी तो सब नही हैं। तो क्या जो वेद के अधिकारी नही, वे मुक्ति नही पा सकते ?

रामानुज : ठीक पूछा गोविंद भट्ट। तुमने ठीक पूछा। वेद आधार है, पूज्य है, परन्तु वह केवल ज्ञान देता है। वह तो है ही। उसे न मानने वाले जैन, बौद्ध, पाशुपत और अन्य धर्मावलम्बी तथा शूद्र वेद अधिकारी नहीं है, किंतु वे भक्ति के अधिकारी हैं।

कुरेश : तो देव ! भक्त ज्ञानी से श्रेष्ठ है ?

रामानुज : निस्सदेह कुरेश। भक्त परमात्मा के सबसे अधिक निकट होता है। वही सबसे श्रेष्ठ है चाहे वह किसी भी जाति मे जन्म ले

चुका हो। वेदाध्ययन करने वाला ब्राह्मण यदि दम्भी और पाखण्डी है तो वह निकृष्ट है। वह शूद्र महान् है जो पवित्रता से जीवन व्यतीत करता हुआ भगवान मे भक्ति रखता है। इसीलिये मै कहता हूँ, ज्ञान से ऊपर है भक्ति।

कुरेश स्पष्ट हो गया देव!

गोविद : किंतु क्या इतर जातीय भी हमारी भाँति भक्ति कर सकते हैं? भक्ति का रूप क्या है देव?

रामानुज : शरण! उस परमेश्वर की शरण में जाना। इसके लिये जाति पूछने की आवश्यकता नहीं है, गोविद भट्ट। सब उसके सामने तो समान है। वही एक है जो पीडितों और दुखियों का सहारा है। जो छोटे-बडे का भेद नहीं करता।

कुरेश : किंतु ब्राह्मण लोग तो कहते हैं कि उन्हे जैसे पृथ्वी का देवता बनाया गया है, वैसे ही वहाँ भी विशेषाधिकार हैं।

रामानुज : तुमने सोचा क्यों नही, कुरेश? यदि उन्हे वहाँ भी कुछ विशेषाधिकार होते तो समान जन्म-मृत्यु के अधिकारियों से उनका कुछ भी भेद न होता? यह सब जो यहाँ हो रहा है यह सब तो एक खेल है। परतु उसका खेल है हमारे लिए यह सब सत्य है। जो इस सत्य मे ऐसे बधन हैं, जो मनुष्य को उस तक पहुँचने मे रोकते हैं। वे अश्रेयस्कर हैं। उन्हे पथ से हटाना चाहिये।

[यादवप्रकाश का प्रवेश]

रामानुज : कौन? गुरुदेव!

यादवप्रकाश : रामानुज...... .

[रामानुज खड़े हो जाते हैं। यादवप्रकाश पाँव पर गिर कर रोते हैं।]

रामानुज : गुरुदेव! आप मुझे पाप से भर रहे हैं। उठिये गुरुदेव!

आपके चरण मेरे सिर पर रहे, आज तक तो मैने यही सीखा है। यह आप क्या कर रहे हैं?

[उठाता है।]

यादवप्रकाश : नही रामानुज! तुम ही मेरे गुरु हो। मैने तुम्हें वेद और उपनिषद पढाये थे, किंतु मनुष्यत्व का पाठ मुझे तुमने ही पढाया है।

रामानुज : क्या कहते हैं गुरुदेव! आप मुझे लज्जित कर रहे हैं।

यादवप्रकाश : लज्जा तो मेरा अधिकार है, वत्स। तुम्हारा यह शील ही तो मुझे निर्लज्ज बना रहा है।

रामानुज : गुरुदेव! आसन ग्रहण करें।

[दोनो बैठते हैं।]

यादवप्रकाश : रामानुज! मेरी आँखें बद थी, तुमने उन्हे खोल दिया। मुझे दीक्षा दो। तुम मुझे अपना शिष्य बना लो।

रामानुज : यह आप क्या कह रहे हैं, गुरुदेव!

यादवप्रकाश तुम तो दयालु प्रसिद्ध हो। क्या मेरे अपराध को क्षमा भी नहीं करोगे?

रामानुज . मेरा इतना दुस्साहस कहाँ, गुरुदेव जो मै आपके इन दीन वचना को चुपचाप सुनता रहूँ।

यादवप्रकाश : रामानुज! मै महापातकी हूँ, मै जघन्य पापी हूँ और भी कुछ सुनना चाहते हो?

रामानुज इतना ही सुन सका हूँ कि गुरुदेव आज व्याकुल हैं।

कुरेश : रामानुजाचार्य! गुरुदेव को सात्वना दो। कहीं ऐसा न हो कि गुरुदेव तुम्हारी नम्रता से वास्तविकता को समझ ही न सके और अपनी ज्वाला में जलते रहे।

रामानुज : नही गुरुदेव! आप जो कहेंगे, मै वह करूँगा।

यादवप्रकाश : तो वत्स, मुझे अपना शिष्य बनाओ।

रामानुज : बनाऊँगा, गुरुदेव ! आपको जिसमे सतोष होगा, उसे मै अवश्य करूँगा ।

यादवप्रकाश : रामानुज तुम धन्य हो ।

रामानुज : गुरुदेव ! जो कुछ मै बोलता हूँ, वह सब आपका ही तो दिया हुआ है ।

यादवप्रकाश : मै केवल हिमगिरि की भाँति गल रहा था, वत्स ! तुम पतित तारिणी जाह्नवी बन कर बह रहे थे ।

[एक शिष्य का प्रवेश]

शिष्य : गुरुदेव !

रामानुज : क्या है वत्स ?

शिष्य : देव ! श्रीरङ्गम् से आलवन्दार यामुनाचार्य के पुत्र आचार्य वरदरङ्ग आये हैं ।

रामानुज : बुलाओ वत्स । आचार्य को वहाँ रोका ही क्यो ?

[वरदरङ्ग का प्रवेश]

वरदरङ्ग : रुका कहाँ, चला ही तो आया हूँ ।

रामानुज : आओ आचार्य ! बैठो ।

[बैठता है ।]

रामानुज : सब सौख्य तो है ?

वरदरङ्ग : एक ही नही है ।

कुरेश : वह क्या आचार्य ।

वरदरङ्ग : श्रीरङ्गम् मे अध्यक्षपद सूना पड़ा है । उस पर एक योग्य व्यक्ति के बैठने की आवश्यकता है । उसके लिये मै यहाँ रामानुजाचार्य को बुलाने आया हूँ ।

कुरेश : बहुत सुन्दर और श्रेष्ठ विचार है ।

यादवप्रकाश मै इसका अनुमोदन करता हूँ । यामुनामुनि की पीठ पर कोई प्रकाण्ड मेधावी ही बैठना चाहिये ।

वरदरङ्ग : आपके सहयोग की ही आशा करके आया था। वैसे मै किस योग्य हूँ।

कुरेश : अपने गुरुस्थान पर पहुँचना तो आचार्य का धर्म है। इसमे पूछना क्या ?

रामानुज : तो फिर यही हो।

[पटाक्षेप]

दृश्य २

[पथ। रामानुज और वरदरङ्ग चल रहे हैं। कुछ शिष्य साथ हैं।]

रामानुज : क्या हम आधा पथ चल आये ?

वरदरङ्ग : नही, अभी देर है। यहाँ कुछ देर विश्राम क्यों न कर लें ? इतना सुन्दर अश्वत्थ वृक्ष है। ऐसी छाया कहाँ मिलेगी ?

[रामानुज और वरदरङ्ग बैठते हैं।]

वरदरङ्ग : (**एक शिष्य से**) निकट ही कूप है। वहाँ से जल ले आओगे ?

शिष्य : जो आज्ञा देव।

[शिष्य का प्रस्थान। उस समय दूर से सुनाई देता है— रामानुज ! रामानुज !]

रामानुज : (**चौंक कर उठकर**) कौन बुला रहा है मुझे ?

वरदरङ्ग : कौन है। दिखाई नही देता ?

[स्वर समीप आ रहा है !]

रामानुज : चारों ओर हरीतिमा छा रही है। कुछ दिखाई ही नही देता।

[यादवप्रकाश का प्रवेश]

यादवप्रकाश : गुरुदेव ! तुम मुझे छोड़ कर चले आये ? मै तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा।

रामानुज : (**संकोच से**) गुरुदेव, आप क्या कह रहे हैं।

वरदरङ्ग : नही आचार्य। संकोच करना ठीक नही। आपको इन्हें यही शिष्य बनाना होगा।

रामानुज : ऐसा करना क्या मुझे शोभा देगा, वरदरङ्ग?

वरदरङ्ग : गुरु यादवप्रकाश की ज्वाला कभी शात नहीं होगी रामानुजाचार्य, पिता जब वृद्ध हो जाता है तब क्या पुत्र उसे गोदी में उठाकर नही चलता! ज्ञान के क्षेत्र में कौन बड़ा और कौन छोटा।

यादवप्रकाश : वरदरङ्ग! तुमने मेरा उद्धार कर दिया! तुमने मेरी रक्षा की है। तुम रामानुज के साथ ऐसे ही हो, जैसे शेष भगवान के साथ पार्षद होते हैं।

वरदरङ्ग . नही आचार्य! मैं आयु को बुद्धि का एकमात्र परिमाण नही मानता। यह सत्य है कि अनुभव मनुष्य का एक साधन है, वह उसे सहारा देता है, किन्तु मेधावी कभी-कभी अल्पकाल मे ही इतना अनुभव कर लेता है, इतना ज्ञान केन्द्रित कर लेता है जो दूसरे धीरे-धीरे भी नही कर पाते।

यादवप्रकाश : मनुष्य निरतर इसी प्रकार तो उन्नति करता है। यही तो उसके विकास का लक्षण है।

रामानुज : मेरा भ्रम दूर हो गया है, वरदरङ्ग। यादवप्रकाशाचार्य!

यादवप्रकाश : गुरुदेव!

रामानुज . मनुष्य निरतर एक दूसरे से सीखते हैं। जो इस सीखने की कला को ठुकरा देते हैं, वे ज्ञान का अपमान करते हैं। यथावस्थित व्यवहारानुगुण ज्ञान ही प्रभा है। ज्ञान विषयावगाही है। जो निर्विशेष है उसका ज्ञान ही नही हो सकता। सब ज्ञान सत्य है, सविशेष विषयक है। भ्रम का ज्ञान, स्वप्न का ज्ञान, यह सब भी ज्ञान ही है। अतः सब ज्ञान और विज्ञानजात यथार्थ सिद्ध है।

यादवप्रकाश : मेरी आँखो के सामने से पर्दा हट गया। सब कुछ भ्रम कह कह कर मै वास्तव को भी झुठा गया था।

वरदरङ्ग : आचार्य। दीक्षा लो।

यादवप्रकाश : (बढ़ कर) प्रस्तुत हूँ।

[पटाक्षेप]

दृश्य ३

[श्रीरङ्गम् का मन्दिर]

[वरदरङ्ग, रामानुज और वरदाचारी प्रवेश करते हैं।]

वरदरङ्ग : आचार्य! यही है आप के गुरु का स्थान। यहीं आपको गुरु की परम्परा चलानी है। मै अभी आता हूँ।

[प्रस्थान]

रामानुज : ब्राह्मण देवता! आपका परिचय?

वरदाचारी : मै यहाँ का प्रधान पुजारी हूँ। यह सब जो कुछ देख रहे हो, यह मेरी ही महिमा है।

रामानुज : मनुष्य होकर इतना अभिमान उचित नही, ब्राह्मण। हम और तुम एक विराट कार्य व्यापार मे साधन मात्र हैं।

वरदाचारी : तुम सन्यासी हो न इसीलिये यह सब कह सकते हो। मुझ पर गृहस्थी का बोझ है।

रामानुज तब तो मुझसे अधिक नम्र और मानवीय तुम्हे ही होना चाहिये था।

[वरदाचारी असंतुष्ट सा जाता है। अनेक व्यक्ति आकर रामानुज को दण्डवत् करते हैं।]

रामानुज : कल्याण हो वत्स!

१ व्यक्ति : देव! आपने आकर अध्यक्षपद ग्रहण करके श्रीरङ्गम् को धन्य कर दिया।

रामानुज : ऐसा न कहो। व्यक्ति का महत्व कभी इतना अधिक नहीं होता। साधन से बढ कर साधना होती है।

[नेपथ्य में शंखध्वनि]

एक व्यक्ति : चलो चलो। आरती का समय हो गया।

[सब का प्रस्थान। रामानुज अकेले रह जाते हैं। वे बैठ कर कुछ सोचने लगते हैं। वरदरङ्ग का प्रवेश।]

वरदरङ्ग : आचार्य यहीं बैठे हैं?

रामानुज : मै थक गया हूँ, वरदरङ्ग। इसलिये सोचा कुछ देर एकात मे बैठा रहूँ।

वरदरङ्ग : तो विश्राम करें। मै अभी आता हूँ। श्रीरङ्गम् की प्रजा आपके दर्शन के लिये उत्सुक हो रही है। वे अपने नये अध्यक्ष को देख कर कृतार्थ होना चाहते हैं न? वरदाचार्य मिले थे?

रामानुज : अभी तो यहीं थे?

वरदरङ्ग : कुछ अभिमानी है न?

रामानुज : नहीं वरदरङ्ग! मुझे उसे अभिमान तो नहीं दिखा, वह मुझे बहुत दुःखी दिखाई दिया।

वरदरङ्ग : (चौंक कर) दुःखी? उसे किसका दुःख है? भगवान् पर जो भेंट चढ़ती है, वह प्रायः सभी को अपने अधिकार मे कर लेता है। आचार्य, उसके पास बहुत धन है। धन के लिये वह दाक्षिण्य को भी छोड़ देता है।

रामानुज : मनुष्य होकर धन का दास है, यही तो उसका दुःख है।

वरदरङ्ग : जब तक धन है तब तक मनुष्य का लोभ क्या जा सकता है, आचार्य?

रामानुज : नहीं जा सकता, वरदरङ्ग। बहुत कम लोग धन को पराजित कर पाते हैं।

बरदरङ्ग : अच्छा गुरुदेव मुझे आज्ञा दें।

[प्रस्थान । राजलक्ष्मी गाती हुई प्रवेश करती है। वह रामानुज को नही देखती। अपने ध्यान में विभोर है। वह स्तंभो की आड़ में गीतरत रहती है। रामानुज उसका कलकण्ठस्वर सुनते रहते हैं, मूक। कुछ भी नही कहते राजलक्ष्मी का हाथ बार-बार उसके सिर पर लगे फूलों को सँवार लेता है, और वह अपने रूप को देखकर मुस्कराती जाती है।]

गीत

सुघर कान्ह विशाल तेरे नयन बंकिम
कुटिल नैन अभिराम, कोरे सलज रक्तिम,
अधर पर धर बाँसुरी जब तू बजाता स्वर रिझाता
कौन तब स्तर रे हटाकर हृदय को मेरे जगाता
मधुर कान्ह प्रबुद्ध तू मेरा मनोहर
आ विनत है हृदय तू निज मृदु चरणधर।
री पुलक गोधूलि म जब शांत होता है चराचर
एक वंशी रव मुझे करता सतत है विकल आतुर,
हृदय मेरा शांत कर हे आप्त चचल!
पीतपट मनुहार के से गीत कामल।

[रामानुज को देख कर घूमती हुई राजलक्ष्मी ठिठक कर रह जाती है। और मुग्ध होकर देखती रह जाती है।]

रामानुज : तुम कौन हो देवी ?

[वह मंत्रमुग्ध-सी देखती रह जाती है।]

रामानुज : देवी !

राजलक्ष्मी : (चौंक कर) ओह ! तुम कौन हो सन्यासी !

रामानुज : मै सन्यासी हूँ और मेरा परिचय भी क्या ?

राजलक्ष्मी : मै देवमन्दिर मे रहने वाली एक अर्चिका हूँ, राजलक्ष्मी !

रामानुज : तुम धन्य हो, जो देवता की अराधना मे तुमने अपने आपको मिटा दिया । ऐसे कितने व्यक्ति होते हैं, जैसी तुम हो ?

राजलक्ष्मी : (एकटक देखकर) सन्यासी, तृष्णा बुझती क्यों नही ? बता सकते हो ?

[नेपथ्य से]

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं
गच्छन्तिनामरूपेविहाय
तथा विद्वान्नामरूपद्विमुक्तः
परात्पर पुरुषमुपैति दिव्यम्
सयो ह वै तत्परम ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति,
नास्या ब्रह्मवित्कुले भवति,
तरति शोक तरति पाप्मान
गुहा ग्रथिभ्यो विमुक्तोऽमृतोभवति

रामानुज : सुनती हो राजलक्ष्मी ! जैसी बहती हुई नदिया समुद्र में पहुँच कर अपना नाम और रूप त्याग कर उसमे लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष मुक्तदशा मे, नाम रूप से रहित होकर अत्यत दिव्य पुरुष परमेश्वर को प्राप्त होता है । वह जो उसे जानता है, वह .स्वय वह ही हो जाता है उसके कुल मे सब ब्रह्म को जानते हैं । वह शोक को तर जाता है, पाप को पार कर जाता है । वह हृदय की अज्ञान आदि ग्रन्थियों से छूट कर अमृत हो जाता है ।

राजलक्ष्मी : मै नहीं जानती देव ! आज तक उन्मत्त महानदी के समान बह रही थी । आज मैने समुद्र देख लिया है । नाम रूप छोड़ने के पहले जो विह्वलातुरता छाई है, उसका बेग सँभालना मेरे लिये अत्यन्त कठिन हो गया है ।

रामानुज : विश्वास रखो देवी। विश्वास जीवन की बहुत बड़ी शक्ति है। मनुष्य विश्वास से ही प्रेरित होकर कर्म करता है और अपने पथ की समस्त बाधाओं को चूर कर देता है।

[राजलक्ष्मी दण्डवत् करती है।]

रामानुज : कल्याण हो।

[पटाक्षेप]

दृश्य ४

[मंदिर का एक आलिंद]

वरदाचारी : सुनते हो। मै देख रहा हूँ दिन पर दिन इस सन्यासी का यश बढ़ता ही जा रहा है।

१ पुजारी : देव। वह जो दिन-रात कुछ न कुछ लिखा ही करता है। मैने इतना स्वाध्यायी व्यक्ति ही नही देखा।

वरदाचारी : तुम भी अजीब आदमी हो। तुम उसकी प्रशसा कर रहे हो।

१ पुजारी : अरे मै उसकी प्रशसा कर रहा हूँ ? मै भी कितना मूर्ख हूँ। मुझे तो उसकी निदा करनी चाहिये।

वरदाचारी : निंदा करो चाहे स्तुति, प्रजा उसी में अपनी भक्ति का साकार रूप देख रही है, ऐसा लगता है। थोड़े दिन बाद अपनी ओर तो कोई भेंट देना ही अपनी भूल समझने लगेगा।

१ पुजारी : तो क्या हुआ, गुरुदेव !

वरदाचारी : (**क्रोध से**) तो क्या हुआ ? मूर्ख, फिर खायेगे क्या ?

[राजलक्ष्मी आती है]

राजलक्ष्मी : स्वामी आप यहाँ हैं ? उधर आपको आचार्य स्मरण कर रहे हैं।

वरदाचारी : स्मरण कर रहे हैं ! कर रहा है तो करने दे। क्या उसके बाप का नौकर हूँ ? मै, मै प्रधान पुजारी हूँ। समझी। तेरा पति इस विशाल मन्दिर का प्रधान पुजारी है।

[राजलक्ष्मी चौंक कर देखती है।]

राजलक्ष्मी : क्या हुआ आपको ?

वरदाचारी : ऐसे क्यों देखती है मूर्ख।

राजलक्ष्मी : आप तो बिल्कुल ठीक थे न।

वरदाचारी : ठीक! अब क्या ठीक नही हूँ ?

१ पुजारी : देवी, तुम जाओ। तुम यहाँ आकर क्यों हमारे गभीर चिन्तन मे व्याघात डाल रही हो।

[राजलक्ष्मी जाती है।]

वरदाचारी : वह भी आश्चर्य करती है, क्यो करती है ?

१ पुजारी : बुला कर पूछूँ ?

वरदाचारी : मूर्ख, उससे पूछने की बात है ?

१ पुजारी : अच्छा उससे नही, मुझसे पूछने की बात है ? तो बता दूँ ? फिर न कहियेगा.. ...

[मूर्ख की भाँति हँसता है।]

वरदाचारी : मूर्ख ! महामूर्ख !!

१ पुजारी : मेरे गुरु ! मेरे गुरु !!

वरदाचारी : एक काम कर सकेगा ?

१ पुजारी : क्या देव !

वरदाचारी : नितांत गोपनीय है।

१ पुजारी : भले ही हो। मुझसे थोड़े ही छिप सकता है।

वरदाचारी : अरे तेरे लिये गोपनीय थोडे ही है। तू ही तो उस कार्य को करने की क्षमता रखता है। कहूँ ?

१ पुजारी : जल्दी, देव। जल्दी !

[वरदाचारी कान में कुछ कहता है। सुन कर १ पुजारी आनद से उछल पड़ता है।]

१ पुजारी : वाह ! वाह ! क्या बात है !

वरदाचारी : ठीक है ? देखा क्या चाल सोची है। न रहे बॉस न बाजे बॉसुरी। अच्छा मै जाता हूँ।

[प्रस्थान। १ पुजारी खड़ा होकर अँगड़ाई लेता है। राजलक्ष्मी का प्रवेश।]

राजलक्ष्मी आज तो बड़ा प्रसन्न दिखाई देता है तू ? क्या बात है रे ?

१ पुजारी : तुम्हे कैसे बता दूँ। बडी गुप्त बात है।

राजलक्ष्मी : अच्छा ? तब तो गुरु ने तुझे भी नही बताई मालूम देता है।

१ पुजारी : वाह ! मुझे कैसे नही बताई ?

राजलक्ष्मी : बताई भी होगी, तो वह थोड़ी ही बताई होगी, जो हमसे कही है।

१ पुजारी : अच्छा ! गुरु जी हमसे ही चाल खेल रहे हैं। इधर हमे बताया, उधर तुम्हे बताया ? क्या बताऊँ, बात गोपनीय है।

राजलक्ष्मी : तभी तो तुझे नही बताई।

१ पुजारी : नही, बता तो दी। मेरे लिये गोपनीय नही औरों के लिये है।

राजलक्ष्मी : तो फिर क्या भय है ? हम नही कह सकते, क्योकि हमारे लिये गुप्त है। तू कह सकता है, क्योंकि तेरे लिये गोपनीय नही।

१ पुजारी : बात तो ठीक है।

राजलक्ष्मी : अरे मुझे काम करना है। तू है व्यर्थ का बात करने वाला। तेरे गुरु ने मुझे बड़ा आवश्यक कार्य बताया है।

१ पुजारी : (रोक कर) ठहरो यह बताओ। तो वह काम मै करूँगा कि तुम करोगी।

राजलक्ष्मी : मै करूँगी। नाम तेरा होगा।

१ पुजारी : मेरा नाम। यह चाल है मुझे फँसाने की। वाह गुरुदेव! मै ही मिला था तुम्हे आचार्य के भोजन मे विष मिलाने को। धन्य हो गुरुदेव!

[राजलक्ष्मी स्तंभित हो जाती है।]

१ पुजारी : क्या हुआ तुम्हे?

राजलक्ष्मी मुझे चक्कर आ रहा है, पुजारी! मुझे छोड़ दे। तू जा। यह काम अब तू ही कर।

१ पुजारी : तुम्हे हुआ क्या?

राजलक्ष्मी : (चैतन्य होकर) कुछ नही। काम करते-करते थक जाती हूँ तो ऐसा ही होता है। तू जा।

[१ पुजारी का प्रस्थान। राजलक्ष्मी देखती है। आचार्य गोष्ठिपूर्ण का प्रवेश।]

गोष्ठिपूर्ण राजलक्ष्मी!

राजलक्ष्मी : आचार्य प्रभु!

गोष्ठिपूर्ण : रामानुज कहाँ हैं?

राजलक्ष्मी : देव, वे आज बहुत से लोगो को उपदेश देने बाहर गये हैं।

गोष्ठिपूर्ण . कब तक आयेंगे?

राजलक्ष्मी : सध्या तक।

गोष्ठिपूर्ण : उन्हे यहाँ कोई कष्ट तो नही?

राजलक्ष्मी देव! मै तो दिन-रात सेवा करती रहती हूँ। फिर भी कोई त्रुटि जाती रह जाती हो, तो मै नहीं जानती। पूछ देखूँगी।

गोष्ठिपूर्ण . अतिथि से स्पष्टवादिता अच्छी होती है, राजलक्ष्मी। यह दो अपरिचित हृदयो को एक दूसरे के समीप लाती है।

[प्रस्थान]

राजलक्ष्मी : अतिथि, क्या अब भी तुम मेरा हृदय नहीं पहचानते ? मैंने क्या नहीं किया कि अपने भावों को तुम्हारे चरणों पर उँडेल दूँ, सन्यासी। (हठात्) उफ ! कितना भयानक ! हत्या का षड्यंत्र ! स्वामी ! तुम ! इतने लोलुप, इतने क्रोधी। जाऊँ देखूँ तो। आज सन्यासी को पथ में ही रोक लेना होगा।

[प्रस्थान। पटाक्षेप]

दृश्य ५

[राजलक्ष्मी उदास सी बैठी सोच रही है। १ पुजारी का प्रवेश।]

राजलक्ष्मी : आ गये ?

१ पुजारी : हाँ, आ रहा है। मैं जाता हूँ।

राजलक्ष्मी : थके होंगे, दिन भर श्रम किया है। तू यहीं रह न !

१ पुजारी : अरे मैं सेवा करूँगा।

[प्रस्थान। राजमक्ष्मी भी जाती है। रामानुज का प्रवेश। वे आकर बैठते हैं। और अंग फैलाकर शांति का श्वांस लेते हैं।]

रामानुज : नारायण ! आज दिन कितना व्यस्त था। क्षण भर भी विश्राम नहीं मिला !

[नेपथ्य से गीत]

हे सन्यासी !

छुनन छुनन रजनी चली
मंदिर मंदिर घमनी बजी
आया मेरे द्वार नभ से
दीपित सुघर चंदा,

फूलो रे मधुर पुलकित बन चचल
गध भरी शेफालिका,
मुस्कानो की जलो आज री
दीपा की प्रिय मालिका,
मदिर तेरा वरण किया
तिमिर पथ तरण किया
आज पुलक आस जगी
युग युग रूप अमदा ।
हे सन्यासी !

रामानुज : दिव्य सगीत है ! हृदय मे एक-एक लहरी एक-एक तार झनझना रही है। गायक का व्याकुल हृदय पुकार रहा है ! कृष्ण नही सुनते। परन्तु कृष्ण सन्यासी तो नही थे ! फिर यह कैसा गीत है ?

[रामानुज उठ कर बैठते हैं। उनके मुख पर शांत मुद्रा है।]

[नेपथ्य से गीत।]

हे सन्यासी !

हो चली आज रीती अरी
प्रिय मेरे जीवन की गगरी
प्यास न बुझी, न बुझी, न बुझी,
ऐ री राका दुलार
बोल क्यो न गया हार
मौन बोल बोल टीस कुछ माँग उठी है,
तेरी याद आज प्यार मेरा बाँध उठी है
मै ढूँढ हारी ढूँढ पथ री
प्यास न बुझी, न बुझी, न बुझी
हे सन्यासी !

रामानुज : (उठ कर) असह्य वेदना पुकार-पुकार कर अपनी ज्वाला को बहा देना चाहती है। किंतु हृदय की ज्वाला बहाये नहीं

बहती। उसको बुझाना होता है। शून्य मे जैसे दूर नक्षत्र टिमटिमाता है, ऐसे ही आनद की साधना बनकर आशा दूर चमकती रहती है और मनुष्य उसी की खोज मे चलता रहता है। यदि मनुष्य मे वेदना नही होती, तो उसमे स्नेह नही होता। यदि स्नेह न होता, तो मनुष्य मे प्रेरणा भी नही होती। प्राणिमात्र मे व्याप्त यह वेदना ही मनुष्य को स्वार्थ से परमार्थ की ओर शक्ति देकर आगे बढाती है। इसका भी क्या कोई अत है? जब हृदय अनुभूति का स्पदन देखता है, तो यह तनिक से सबन्ध से भी जन्म ले लेती है।

[नेपथ्य से गीत]

हे सन्यासी!
आज जीवन विभोर मेरा देखो
रे देखो, रे देखो!
फूलो का हास
भरे अविगत विलास
आज रोम-रोम में उमग जाग उठी है,
रक्त स्फूर्ति दीप्त बनी नाच उठी है,
आज यौवन विभोर मेरा देखो
रे देखो, रे देखो!
हे सन्यासी!

[सगीत निकट आता है।]

रामानुज : कौन गा रहा है?

[राजलक्ष्मी का प्रवेश]

राजलक्ष्मी : सन्यासी।

रामानुज : देवी!

राजलक्ष्मी : हृदय पुकार रहा है।

रामानुज : आज वह वेदना से जो विह्वल हो उठा है।

राजलक्ष्मी : तुम मुझसे घृणा करते हो प्रभु ?

रामानुज : (मुस्कराकर) मै किसी से भी घृणा नही करता, देवी !

राजलक्ष्मी : सन्यासी ! तुम्हे देखकर मेरा हृदय जला जाता है। मै तुम्हे इस रूप मे नही देख सकती। यह रूप और तुमने कैसा वेष बना रखा है, सन्यासी ?

रामानुज : सन्यासी से भी रूप की आकाक्षा करती हो, देवी ! सन्यासी तो अपने गार्हस्थ्य के साथ ही अपने सौदर्य के बाह्य रूपो को छोड आता है।

राजलक्ष्मी : परन्तु जब से मैने तुम्हे देखा है, मुझे नही मालूम मुझे क्या हो गया है।

रामानुज : तुम्हे ममता उमड आई है।

राजलक्ष्मी : ममता ! नही सन्यासी ! यह वेदना है। यह वेदना है।

रामानुज : तब यह कल्याणकारिणी शक्ति है, देवी। स्त्री की वेदना मनुष्य को सच्चे रास्ते पर ले जाने वाली शक्ति है। स्त्री मे निस्सदेह एक कोमलता होती है जो सहिष्णुता की अक्षय शक्ति धारण करती है।

राजलक्ष्मी . मेरे देवता ! जब से तुम्हे देखा है, मै पागल हो रही हूँ। यह तुमने क्या नीरस साधु वेषधारण कर लिया है, सन्यासी। इसे त्याग दो। मेरी आग को बुझा दो प्रभु। मेरे प्राण ? मै तुम्हे देख कर सब कुछ भूल गई हूँ।

[रामानुज पीछे हटते हैं।]

गीत

राजलक्ष्मी :

ओ यौवन मेरे—
भीग ले प्रेम फुहार फुही बन गिरती,
खोले दोनो हाथ
नयन ले मूँद, सुधा की धारा झरती।

मेरे झपक, झपकते पलक
उलझते अलक
न मै पथ आज कही पहॅचान
किये अभिमान
पथ चल सकती।
मै जहॉ वही है क्रोध
शाति का रोध और सन्तोष
मिलन का बोध,
ओ यौवन मेरे—
भीग ले प्रेम फुहार फुही बन गिरती।

[चरणों पर गिरती है।]

रामानुज : माता ! उठो। अपने पुत्र को वर दो कि वह तुम्हारी सेवा कर सके।

राजलक्ष्मी : (चौंक कर उठकर) तुमने कहा ? माता ! माता ! तुमने कहा सन्यासी ! मै घोर पापिनी हूॅ, सन्यासी ! मैने पाप किया है। मै विवाहिता हूॅ, मैने पाप किया है।

रामानुज : नही देवी। तुमने प्रेम किया है। प्रेम पाप नही है।

राजलक्ष्मी . किंतु मै विवाहिता हूॅ। स्वामी से मैंने विश्वासघात किया है।

रामानुज : तुमने कृष्ण से प्रेम किया है। तुमने देवता से प्रेम किया है।

राजलक्ष्मी : तुम देवता हो ! तुम देवता हो ?

रामानुज . मै देवता हूॅ। तुम स्वय देवता हो। विह्वलवासना से उद्वेलित प्रेम को कलुष कहकर उससे डरो नही। मनुष्य मे सहज तो वही है ! किंतु उसे और कलुषित बनाती न चली जाओ। जो स्नेह हृदय मे

उमड़ा है, उसे वेदना के सहारे देकर पवित्र से पवित्रतम करती चली जाओ!

[राजलक्ष्मी दण्डवत् करती है।]

राजलक्ष्मी : तुमने मेरे हृदय से अंधकार हटा दिया, आचार्य !!

[१ पुजारी का प्रवेश।]

१ पुजारी चलिये प्रभु! भोजन करने चले। भिक्षा प्राप्त करे।

रामानुज : चलो।

राजलक्ष्मी : ठहरिये!

[बढ़कर पुजारी का हाथ पकड़ लेती है।]

राजलक्ष्मी : आज आचार्य जो भिक्षा प्राप्त करेंगे पहले तुझे उसी भोजन मे से खाना पडेगा।

१ पुजारी : वाह! मै क्या कोई मूर्ख हूँ। तुम ही न खा लेना।

रामानुज : क्यो क्या बात है?

१ पुजारी . उसमे प्रधान पुजारी, इसके पति ने मुझसे विष मिलवा दिया है। वह तुम्हारे खाने के लिये है। पति तुम्हे खिलाना चाहता है, पत्नी मुझे ही खिलाना चाहती है।

रामानुज : पुजारी! वरदाचार्य को इतना विद्वेष क्यो? राजलक्ष्मी! उसे छोड़ दो।

[छोड़ती है। पुजारी भागता है।]

रामानुज . राजलक्ष्मी!

राजलक्ष्मी : देव! आपको बिल्कुल क्रोध नही?

रामानुज : किसलिये और किस पर क्रोध?

राजलक्ष्मी : प्रभु! आप सत्य ही देवता है। मेरे स्वामी ने आपको विष देकर मार डालने का प्रयत्न किया परन्तु आप एक विशाल पर्वत के समान गरिमा से उन्नतशीश खड़े है। आज गभीर से गभीर महासागर भी आपके चरणो पर पड़ा अपने ही हाहाकार से ग्रस्त बार-बार अपनी

हो वासनाओ की तरगो को टकराता, फेनिल होकर निराश सा बिखर रहा है।

[वरदाचारी का प्रवेश । आकर रामानुज के चरणों पर गिरता है। रोता है।]

वरदाचारी : प्रभु! मुझे क्षमा करें। मै नीच हूँ, मै कुत्सित हूँ। मैने आपके विरुद्ध इतना घोर अपराध किया है। प्रभु! मै पापी हूँ। मुझे क्षमा मत करिये। मुझे दण्ड दीजिये, प्रभु!

रामानुज : तेरा प्रायश्चित ही तेरा दड है बधु! उठ! और प्रभु की सेवा करते समय अपने स्वार्थ को सर्वोपरि न रख। तू यह तो समझ कि तू जिस मदिर की मूर्ति का सेवा कर रहा है, वह मानने मे ही तो भगवान है। जीव बद्ध है। वह ही मुक्त भी बनता है। नित्य हो जाता है। बद्ध जीव ही बुभुक्षु और मुमुक्षु होता है, पुजारी! बुभुक्षा उसे अर्थ काम पर और धर्म काम पर बनाती है परन्तु ईश्वर! वह अपने पाँचों भेद से एक ही रूप मे स्थित है। मानव नयनगत मूर्ति देवता का पथ है, उसका ध्यान केन्द्रित करने का एक पथ मात्र है। उस देव मदिर को तू व्यापार का अड्डा बना रहा है?

पुजारी वरदाचारी प्रभु! आप महान हैं। मुझे क्षमा करे।

रामानुज : उठो वरदाचार्य! तुम भूल रहे हो। जीवनपर्यन्त जो अपने अपराध पर रोता है और आगे के लिये कोई सत्कर्म नहीं करता वह कायर है। जाओ।

[वरदाचारी का प्रस्थान]

रामानुज : तुम नही जाओगी, राजलक्ष्मी?

राजलक्ष्मी : मै देख रही हूँ तुम कितने महान् हो! कितने श्रेष्ठ हो! क्या ससार मे इतने अच्छे मनुष्य भी हैं?

[पटाक्षेप।]

दृश्य ६

[मंदिर। गोष्ठिपूर्ण पूजा कर रहे हैं। वे ध्यानस्थ हैं। कुछ समय बाद आँख खोलते हैं।]

गोष्ठिपूर्ण : वरदाचार्य !

[वरदाचारी का वही मित्र प्रवेश करता है।]

१ पुजारी : प्रभु ! वे तो कहीं चले गये हैं।

गोष्ठिपूर्ण : कहाँ गये हैं रे ढपोरशंख !

१ पुजारी : (हँस कर) प्रभु ! यहीं कहीं घूमते हुये चले गये होंगे।

गोष्ठिपूर्ण : अच्छा जा रामानुजाचार्य को बुला कर ला।

१ पुजारी : न महाराज उन्हें तो नहीं बुलाऊँगा।

गोष्ठिपूर्ण : क्यों ?

१ पुजारी : मैंने उन्हें अभी तक प्रातःकाल से देखा नहीं। शायद वे मर गये हैं।

गोष्ठिपूर्ण : (डाँट कर) मूर्ख ! क्या बकता है।

१ पुजारी : बकता नहीं आचार्य। उन्हें तो कल संध्या समय ही विष दे दिया गया।

गोष्ठिपूर्ण : किसने ?

१ पुजारी : वरदाचार्य ने।

[रामानुज का प्रवेश]

रामानुज : प्रणाम गुरुदेव !

गोष्ठिपूर्ण : रामानुज ! तुमने सुना ? क्या कह रहा है यह ?

रामानुज : सुन लिया देव ! यह किसी स्वप्न लोक की बात कर रहा है। मुझे तो इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

गोष्ठिपूर्ण : यह मूर्खता है रामानुज, किंतु मूर्ख जब कोई बात कहता है तो उसकी बात का कोई आधार अवश्य होता है।

रामानुज : जाने दें देव !

गोष्ठिपूर्ण : (पुजारी से) तू जा !

[उसका प्रस्थान।]

रामानुज : देव ! बहुत दिनों से हृदय मे साध छिपाये हुए था। आज मन करता है उसे कह दूँ।

गोष्ठिपूर्ण : कहो वत्स ! अवश्य कहो। क्या कुछ ऐसा है जो मै तुम्हारे लिये कर सकता हूँ ?

रामानुज : देव मुझे दीक्षा दे।

गोष्ठिपूर्ण : वत्स ! मै तुमसे प्रसन्न हूँ। मे तुम्हे मत्ररहस्य भी बतलाता हूँ।

[रामानुज उठ कर दंडवत् करते हैं।]

रामानुज : गुरुदेव ! मै धन्य हुआ।

गोष्ठिपूर्ण . स्तुति करो रामानुज ! भगवान की स्तुति करो।

रामानुज : (ध्यान मग्न होकर)

पितरम् मातरम् दारान् पुत्रान् बन्धून् सखीन् गुरून्
रत्नानि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च
सर्व धर्मांश्च सन्त्यज्य सर्व कामाश्च साक्षरान्
लोक विक्रान्तचरणौ शरणम् तेऽव्रजम् विभो ![1]

[नेत्र खोलते हैं।]

गोष्ठिपूर्ण : साधु रामानुज ! साधु ! सुनो।

[कान में कुछ कहते हैं। रामानुज के नेत्र आनन्द से खुल से जाते हैं।]

रामानुज : प्रभु ! यही है वह मत्र !

---

१ हे प्रभु ! मै पिता, माता, स्त्री, पुत्र, बधु, सखा, रत्न, धनधान्य, क्षेत्र, गृह, सारे धर्म, अक्षर सहित सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके समस्त ब्रह्माण्ड को आक्रान्त करने वाले आपके चरणा की शरण में आया हूँ।—रामानुजकृत।

गोष्ठिपूर्ण : यही है वत्स। इसे किसी को भी न बताना क्योकि इसका जानने वाला मुक्त हो जाता है।

रामानुज : क्या यह सत्य है, गुरुदेव!

गोष्ठिपूर्ण : बिल्कुल सत्य है, वत्स!

रामानुज : गुरुदेव! मै आनन्द से पागल हो जाऊँगा।

गोष्ठिपूर्ण : वत्स! धैर्य धारण करो।

[१ पुजारी का प्रवेश।]

१ पुजारी : देव!

गोष्ठिपूर्ण : क्या है?

१ पुजारी : देव! कुछ उत्तरापथ से काशी पंडित आये है। वे आप से मिलने के इच्छुक हैं।

गोष्ठिपूर्ण : चलता हूँ।

[प्रस्थान। दोनों के जाने पर रामानुज कुछ पागल सा उठता है। फिर सोचता है। राजलक्ष्मी का प्रवेश।]

राजलक्ष्मी : प्रभु! क्या सोच रहे हैं।

रामानुज : राजलक्ष्मी!

राजलक्ष्मी : प्रभु!!! आप चिंतित हैं?

रामानुज : हाँ राजलक्ष्मी मै चिंतित हूँ। अपने लिये नही, मै ससार के लिये चिंतित हूँ।

राजलक्ष्मी : ससार! ससार के दुख क्या आप समेट सकेगे आचार्य! यहाँ क्या कोई एक दुख है। अपार अधकार छाया हुआ है। किसी को भी राह नही दिखाई देती।

रामानुज : (आगे बढ़ कर) तुम ठीक कहती हो, राजलक्ष्मी। वे सब दुःख से व्याकुल हो रहे हे। वे सब पीड़ित और आर्त्त हैं।

राजलक्ष्मी : सन्यासी! तुम तो अपनी मुक्ति के लिये अपनी स्त्री का त्याग करके आ गये हो न?

रामानुज : नही राजलक्ष्मी ! ऐसा न कहो । मनुष्य को सुख मिले यही मेरा एक मात्र स्वार्थ है । स्वार्थ ! मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये केवल अपना ही कल्याण करना चाहता है । वह ज्ञान व्यर्थ है जो ससार मे अधकार फैला कर अपने आपको आलोकित करने का प्रयत्न करता है । मै जाता हूँ, राजलक्ष्मी । मै जाता हूँ । आज मै सारे पापो को समूल मिटा दूँगा । आज कोई भी बधन मुझे नही रोक सकेगा ।

राजलक्ष्मी : प्रभु ! आप क्या कह रहे है ?

रामानुज : सारा ससार सुने, राजलक्ष्मी ! मनुष्य अपने चारो ओर ऐसे बधन क्यो बनाए कि वह दूसरो का दुख देख कर भी मूक बैठा रहे ! क्योंकि उसे अपनी ही आत्मा का भय निर्बल बनाया करता है ? मुमुर्षु प्राणी ! अपने चेतन को पहचान । उठ और आह्वान दे ।

[प्रस्थान । गोष्ठिपूर्ण का प्रवेश ।]

गोष्ठिपूर्ण : रामानुज ? कहाँ गया ?

राजलक्ष्मी : देव ! बडे उत्तेजित मे कहा चले गये हैं ।

गोष्ठिपूर्ण : उत्तेजित मे चले गये है ? कहाँ ?

राजलक्ष्मी : मै नही जानती ।

[प्रस्थान ।]

गोष्ठिपूर्ण : चलूँ । तो फिर मै ही पडिता की सारी व्यवस्था करूँ ।

[प्रस्थान । नेपथ्य में घटे बजने लगते हैं । पटाक्षेप ।]

दृश्य ७

[नेपथ्य में मै नही रुकूँगा ! एक स्वर : कहाँ जा रहे हो रामानुज ? रामानुज का स्वर : हट जाओ !]

[तब छाया चित्र दिखता है । गोपुर शिखर पर रामानुज खड़ा है । हाथ उठा कर चिल्लाता है ।]

आओ ! आओ ! अनाथ जीवन मे भटकते हुए प्राणियो ! मै तुम्हे जीवन की ज्योति देता हूँ !

नेपथ्य में कोलाहल : जय ! रामानुजाचार्य की जय !

रामानुज का स्वर : तुम विषम अधकार मे पग-पग पर ठोकरे खा रहे हो। दैन्य तुम्हारी सत्ता को चकनाचूर कर रहा है। हाहाकार करते हुए मानवो ! दिगत व्यापी विषादो ने तुम्हारी मनुष्यता को अवरुद्ध कर दिया है। सस्कारो मे बँधे हुए तुम छटपटा रहे हो। पूर्वजन्म के पापो की भयावनी छाया तुम्हे ग्रस कर क्षण-क्षण भयभीत कर रही है। आओ ! आओ ! मै तुम्हे शक्ति देता हूँ ।

[नेपथ्य में भीड़ का कल-कल नाद। रंगमंच पर क्रुद्ध ब्राह्मण आते हैं। गोष्ठिपूर्ण आगे हैं।]

गोष्ठिपूर्ण : क्या कर रहा है, यह रामानुज ! सर्वनाश हो रहा है। ब्राह्मणो का यह प्रच्छन्न द्वेषी आज क्या कर रहा है ?

रामानुज का स्वर . आर्त्त प्राणियो ! बुभुक्षित तृष्णा से पीडित आत्माओं ! ब्राह्मणो ने जीवन का सुख अपने पास केन्द्रित कर लिया है। मै वह रत्न कोष तुम्हारे सामने आज खोल कर तुम्हे मुक्ति का प्रशस्त मार्ग दिखाना चाहता हूँ। किसलिये तुम जीवनपर्यन्त परिश्रम करते हो, किंतु तुम्हें भगवान तक पहुँचने का पथ भी नही दिखाया जाता। तुम्हारा जीवन एक कारागृह के समान है, जिसमे कर्म लोक की समस्त यातनाएँ तुम्हे खाये जा रही है।

[भीड़ का कोलाहल।]

गोष्ठिपूर्ण : अनर्थ हो रहा है। अरे उसे कोई रोकता क्यों नहीं ?

१ ब्राह्मण : मैने भेज दिये है कुछ लोग। देखिये। वे बोल उठेगे।

नेपथ्य में स्वर : उत्तर आओ रामानुज ! प्रलय को इतने शीघ्र ही आने का निमत्रण न दो। ब्राह्मणो का क्रोध बहुत भयानक होता है।

रामानुज का स्वर : ब्रह्मा और रुद्र का क्रोध भी मुझे पीछे नही हटा सकता ब्राह्मणो ! पृथ्वी पर अनाचार बढता जा रहा है, इसलिये कि सारी सत्ता तुमने अपने स्वार्थी पजो मे दबा रखी है। मुझे भू भार उतारने दो। मुझे मनुष्य के कल्याण के लिये भगवान का रास्ता बताने दो।

[**भीड़ की कलकल।**]

रामानुज का स्वर : हे भटकते हुए प्राणियो ! मदिर के गोपुर से आज मैं गुरुमत्र पुकारता हूँ।

गोष्ठिपूर्ण : अरे सर्वनाश कर दिया ! जो आज तक केवल ब्राह्मणों का अधिकार था, वह इसने सबके सामने कहने का निश्चय कर लिया है ?

[**रामानुज का स्वर : बोलो ! वेदनाओं से व्याकुल मनुष्यों ! मेरे साथ बोलो ! ऊँ नमो नारायणाय !**]

[**भीड़ बोलती है—ऊँ नमो नारायणाय !**]

गोष्ठिपूर्ण (कानों में उँगली डाल कर) डूब गया। ब्राह्मणों के गौरव का सूर्य अस्त हो गया। जिस वेदान्त मत के शकर जैसे महा-पण्डितों को पाकर ब्राह्मण ने कुछ दिन आश्वासन पाकर विश्राम का श्वाँस लिया था, वह आज इस अधर्मी ने नष्ट कर दिया। कुलाङ्गार ! पातकी ! जघन्य मूर्ख !

[**नेपथ्य—ऊँ नमो नारायणाय ! ऊँ नमो नारायणाय ! का गंभीर समवेत स्वर एक साथ दुहराया जाता है।**

गोष्ठिपूर्ण : पराजय ! चारों ओर अधर्म ! क्या करें यह ब्राह्मण ! चारों ओर विवशता।

१ ब्राह्मण : (शीघ्रता से प्रवेश करके) देव असख्य प्रजा बाहर एकत्र हो रही है। केवल सिर ही सिर दिखाई दे रहे हैं। समझ मे नहीं आता क्या होने वाला है ?

गोष्ठिपूर्ण : होगा क्या ? जब ब्राह्मण ही नीचों से जाकर मिल गया, तो और होगा भी क्या ?

नेपथ्य में रामानुज का स्वर : यही है वह गुप्त रहस्य प्राणियो ! धर्म किसी की धरोहर नही है। धर्म मानव मात्र का है। आज मैने तुम्हे स्वतत्र कर दिया है। तुम्हारा भगवान् तुम्हारा है। वह केवल ब्राह्मणो की सपत्ति नही है।

[नेपथ्य में गीत । राजलक्ष्मी का स्वर ।]

जागो हे युग-युग के बदी,
जागो !
अमर किरण फूटी है नभ से
छिन्न कर उठी पाश तिमिर के,
जागो हे युग-युग के बदी
जागो !!
आत्मा के निर्जन गह्वर में
गूँजे यह आलोक प्रतिध्वनि
दूर-दूर तक ज्ञान विकासित
करे मुक्त जीवन की जय ध्वनि,
जागो हे युग-युग के बदी !
जागो !
कठिन यातनाएँ ग्रसती हैं,
विकल वासना घिर उठती है,
आज साधना स्वय तुम्हारी
आई पथ मे, जगा रही है,
जागो हे युग-युग के बदी !
जागो !

गोष्ठिपूर्ण : कौन गा रहा है ! राजलक्ष्मी ! वह भी उधर ही चली गई ? (**पुकारकर**) रामानुज ! रामानुज !

[रामानुज का वेग से प्रवेश ।]

रामानुज : गुरुदेव ! आज्ञा !

गोष्ठिपूर्ण : नराधम ! किस मुख से तू मुझे गुरु कहने का साहस कर रहा है ? इसीलिये मैंने तुझे गुरुमन्त्र की दीक्षा दी थी, कि तू इन शूद्र, म्लेच्छ और नीचों को जाकर वह पवित्र देववाणी सुनाये ? आज ब्रह्मा का सिर गिर गया होगा ! नीच ! इस पवित्र पृथ्वी से देव घोष सदा के लिये समाप्त हो जायेगा । अब तक जितने भी लोगों ने धर्म पर प्रहार किया है, वे सब बाह्यधर्मी थे । किन्तु तू ? कुठार मे लगी वनकाष्ट है पापी । तूने सर्वनाश कर दिया ।

रामानुज शांत हो गुरुदेव ! क्या मैंने कोई पाप किया है ? मनुष्य को मुक्ति की वाणी सुनाना क्या कोई अपराध है ? आपने ही कहा था मनुष्य इस मंत्र से मुक्त हो जाता है ।

१ ब्राह्मण : मुक्ति ? किसकी मुक्ति ? कुलीनों की मुक्ति या नीच चमारों की मुक्ति ? तुम ऊँच-नीच का भेद नहीं जानते । मनुष्य की गरिमा को नष्ट कर रहे हो । तुमने चमारों और अंत्यजों तक को पवित्र वाणी सुना दी ।

रामानुज : मुक्ति तो ऊँच नीच नहीं जानती, ब्राह्मण । क्या ईश्वर के सामने तुम्हारे पाप-पुण्य का लेखा-जोखा होते समय यह कह कर तुम बच जाओगे कि तुम ब्राह्मण थे ?

गोष्ठिपूर्ण : तर्क ! तर्क नास्तिकों का आयुध है मूर्ख ! तू उसे श्रुति पर लगा रहा है । सावधान, कहीं तेरी अश्रद्धा की पैनी धार उसे लहूलुहान न कर दे ।

२ ब्राह्मण : सनातन से जो होता आया है, यदि तुम उसे ही अशाश्वत बना दोगे तो फिर इस संसार में मनुष्य को भय किसका रहेगा ? सारी मर्यादा का नाश न हो जायेगा ।

३ ब्राह्मण : हो जायेगा ! हो गया । शूद्र समाज समुद्र की भाँति है,

रामानुज ! ब्राह्मण ने उसे ऐसी बेला मे बाँध दिया है जिससे वह निकल नही सकता ।

रामानुज : तभी वह निरतर हाहाकार किया करता है, ब्राह्मण ! उसका खार कितना भयानक हो उठा है जानते हो ?

१ ब्राह्मण : अपने ही पाप से उसके कर्म जघन्य हैं । वह गदे काम करता है ।

रामानुज : और हम क्या करते हैं ? हम अपनी सारी अस्वच्छता उसी अगाध समुद्र मे फकते चले जा रहे हे । अधिकार के सूर्य से उनके सत् का शोषण करके आकाश मे उड़ा कर हम उसे अपने दभ के पर्वत से टकरा कर बरसाते हैं और तब उसी वारि को पतिततारिणी भागीरथी कह कर उसका जल पी-पी कर स्वर्ग की याचना किया करते हैं ।

गोष्ठिपूर्ण : रामानुज ! यह नही हो सकता । तुझे यह अहंकार छोड़ना पड़ेगा । तुझे ब्राह्मण कभी भी क्षमा नही कर सकेंगे ।

२ ब्राह्मण : क्षमा ! ऐसे कठोर पाप के लिये भी क्या कोई दण्ड है ?

[हँसता है ।]

रामानुज : हँस रहे हो ब्राह्मण ! उस समय रो उठे थे जब बाहर असख्य प्राणियो के सूखे हृदयो पर अमृत की वर्षा हुई थी । तुम दूसरों को सुखी भी नहीं देख सकते ? क्या है वह महत्व तुममे कलियुगी ब्राह्मणों, जिसके लिये तुममें इतना अहकार भरा हुआ है । तुम भगवान् कृष्ण से भी महान् हो ? वे जो कहें, तुम उसे भी अश्रावित छोड़ने का दभ रखते हो ? मनुष्य की यातना तुम्हे कौन सा सुख देती है ? मुझे उत्तर दो ब्राह्मण, मुझे उत्तर दो ।

१ ब्राह्मण : बस, बस बहुत हुआ । रामानुज ! ब्राह्मणो से आजकल किसी ने प्रश्न करने का दुस्साहस नही किया । तू पाप के गर्त्त मे गिर गया है ।

२ ब्राह्मण : चाण्डाल और कौआ कभी इद्र के समान नही हो सकते

रामानुज। तू पण्डित है, मेधावी है, किन्तु क्या अपने व्यक्तित्व के बल पर तू धर्म को बदल देगा ?

३ ब्राह्मण · धर्म ही हमारा जीवन है। पूर्वजों के पुण्य-प्रताप को क्या हम तेरी मूर्खता के लिये त्याग देंगे ?

-१ ब्राह्मण : उत्तर न दे, रामानुज। ब्राह्मण क्रुद्ध है। जब वे क्रुद्ध होते हैं तो बडे बडे सम्राटों को कुचल देते हैं।

गोष्ठिपूर्ण : नहीं, रामानुज ! तुझे उत्तर देना होगा। मैंने तुझसे कहा था कि तू योग्य पात्र है परन्तु तू अधम पात्र प्रमाणित हुआ। तुझे जाति से बहिष्कृत क्यों न किया जाये ?

२ ब्राह्मण : (हँसकर) ठीक कहा आचार्य ! ऐसे नीच के लिये ऐसा ही दण्ड उपयुक्त है।

३ ब्राह्मण : आचार्य ने उचित कहा।

१ ब्राह्मण : निर्णय हो।

रामानुज ब्राह्मण ! किसका निर्णय करना चाहते हो ? परमेश्वर और मनुष्य के सबध का निर्णय करने का अहकार भी है तुममे ? अपनी सीमा की लघुता को भूल कर तुम विराट् आकाश का शून्य अपनी मुट्ठी मे भर लेना चाहते हो। मैने कोई पाप नहीं किया। तुममे क्या शक्ति है कि तुम मुझे जातिच्युत कर सको। तुम धर्म को नही जानते। गुरुदेव के कारण चुप हूँ, अन्यथा मै तुम सबसे शास्त्रार्थ करके कहता हूँ कि धर्म की गति विचित्र है। तुम एक परिपाटी को लेकर उसकी सूक्ष्म गतियों को नही पहचान सकते। धर्म मनुष्य का है, मनुष्य के कल्याण के लिये ही ईश्वर ने ज्ञान फैलाया है। कौन है जो इसका प्रतिवाद कर सकता है ? मै दड के लिये उपस्थित हूँ। मुझे उत्तर दो।

गोष्ठिपूर्ण : रामानुज ! !

रामानुज : आचार्य ! आपके उपदेशों का यदि यही अर्थ नहीं है, तो मुझे आज्ञा दें, मै समुद्र मे जाकर डूब जाऊँ।

रामानुज : प्रभु, आप विचलित नही हुए, आप तो मेरी परीक्षा ले रहे थे ।

गोष्ठिपूर्ण : रामानुज ! आज से तुम ही विशिष्टाद्वैत सप्रदाय के प्रवर्तक कहलाओगे । मै आशीर्वाद देता हूॅ ।

रामानुज : नही प्रभु ! और मेरे वे गुरुजन जो जीवनपर्यंत साधना मे लगे रहे ।

गोष्ठिपूर्ण : वे स्वय भक्त थे, रामानुज, परन्तु वे भक्ति का वास्तविक अर्थ लोक कल्याण है, नही जान पाये थे । ब्राह्मणो जाओ । रामानुज विजयी हैं ।

[सब ब्राह्मण चले जाते हैं । पटाक्षेप ।]

अंक ५

[विष्कम्भक]

[पथ । वेदनायकी बगल में घड़े धर कर ला रही है। कुछ पुरुष और स्त्री आपस में बातें कर रहे हैं। वेदनायकी खड़ी होकर सुनती है ।]

१ पुरुष : रामानुज का यश दिगतो मे फैलता जा रहा है ।

२ पुरुष : वे अपने मतानुयायियो को श्री वैष्णव बनाते जा रहे हैं ।

१ पुरुष : ब्राह्मणों मे इस समय खलबली मच गई है ।

२ पुरुष : श्रीरगम् मे यज्ञमूर्ति ने उन्हे चुनौती दी । वह अद्वैतवादी था । उससे आचार्य का सोलह दिन तक शास्त्रार्थ हुआ । ऐसा लगता था दोनों ओर से पाण्डित्य झड रहा था । अत मे यामुनाचार्य का 'मायावाद खडन' पढ़कर उन्हाने यज्ञमूर्ति को परास्त कर दिया । जब यज्ञमूर्ति पॉव पर गिरा तो उन्होंने उसे 'देवराज' कहा । चारो ओर जय-जयकार होने लगा । उस समय वे भव्य दिखाई दे रहे थे ।

१ स्त्री : वे तो बहुत सुन्दर हैं । उनकी स्त्री बड़ी भाग्यशालिनी होगी जो ऐसे पुरुष को पा सकी । पुरुष तो इस ससार मे अनेक हैं, परन्तु ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति कहाँ ? भगवान ने जिस स्त्री को यह भाग्य दिया वह कैसी होगी ?

२ स्त्री : वह तो कहते हैं बडी कर्कशा है । स्वामी को छोड़ गई । दिन-रात लड़ती थी ।

१ स्त्री : तभी !

२ पुरुष : अरे तुम क्या ब्याह का पचड़ा ले बैठी। वे सन्यासी हैं।

१ पुरुष : चनसुब्बप्पा नामक पाशुपत आया था तब तो वहाँ मै भी था। आचार्य ने जो उससे कहा कि तुम क्राथन विततन करके रहते हो, उससे ससार का कल्याण क्या है ? पाशुपत क्रुद्ध हो गया।

१ स्त्री : हो जाये उससे क्या ?

२ पुरुष : वह उत्तर नही दे सका ?

१ पुरुष : उत्तर ? फिर तो आचार्य ने दार्शनिक तत्त्वो की भीड लगा दी।

२ पुरुष : फिर ?

१ पुरुष : निकट के ग्राम मे सब श्रीवैष्णव हो गये। वह पाशुपात भी तब श्रीवैष्णव हो गया।

२ पुरुष : आचार्य अब अधेड हो चले हैं। तरुणाई मे वे बड़े सुन्दर थे।

१ स्त्री : सच ?

२ पुरुष : आचार्य महान् हैं। वे दिग्विजय कर रहे हैं। जब वे चलते है तो उनके शिष्य जयजयकार करते 'जयति फणिराज' कहते, दिन मे मशाल जलाकर बढते हैं। आगे-आगे घटा निनाद करता हाथी चलता है।

१ पुरुष : कोई उनकी प्रचण्ड मेधा के सामने नही टिक पाता।

१ स्त्री : वे गुरु के असीम भक्त हैं।

१ पुरुष . वे अभी काश्मीर भी तो गये थे।

३ पुरुष : तभी वे काश्मीर से बोधायनवृत्ति ढूँढ कर लाये हैं। काश्मीर का हिममय मार्ग और दूर, इतनी दूर, तुषार धौत पथो पर चलना। बीच के भयानक वनों को पार करना, कोई साधारण कार्य था ? तिस पर ग्रथ केवल पढ़ने को दिया गया। उनके शिष्य कुरेश ने उसे कण्ठाग्र कर लिया। तब उन्होंने श्रीभाष्य लिखा।

४ पुरुष : वहाँ कहाँ, लिखी तो उन्होंने काची आकर। उस बोधायन-वृत्ति की सहायता से उन्होंने श्रीभाष्य की रचना की। जब उसे लिख चुके तो फिर काश्मीर गये। वहाँ के पडितो ने जो सुना तो देखते के देखते रह गये। सरस्वती-पीठ मे उनके भाष्य का बडा आदर हुआ। उन्होंने उसका नाम श्रीभाष्य रखा है।

१ पुरुष : परकालमठ मे उन्होंने हयग्रीव की मूर्ति स्थापित की है। आचार्य को यह मूर्त्ति काश्मीर के पण्डितो ने उपहारस्वरूप भेंट की है। जिस समय आचार्य उत्तर देश मे गये भक्ति का एक लहर दौड गई! लोग मुक्त से हो उठे।

२ पुरुष वे धन्य हैं। उनका गौरव सुन-सुन कर रोमाच हो आता है।

१ पुरुष . ब्राह्मण तो उन्हे कई स्थानो पर गाली देने लगे कि यह शकर का विरोधी, वेद विरोधी है।

३ पुरुष : भयानक बाधाएँ रहते हुए भी आचार्य समुद्र तीर पर खड़ी चट्टान की भाँति अडिग खडे रहते हैं। देखने मे लगता है वे सरल हैं, किंतु जब उनसे टक्कर होती है, तब समुद्र फेनिल होकर बिखर जाता है और वे हँसते हुए सारी विपत्तियाँ झेल कर भी खडे रहते है।

१ स्त्री : आचार्य बडे सरल हैं।

४ पुरुष : अरे, यह कैसा कोलाहल हो रहा है?

१ पुरुष : लगता है कही शास्त्रार्थ हो रहा है।

[कुछ लोगों का प्रवेश। वे गाते हुए आ रहे हैं।]

गीत

प्रभु! तुम दीन शरण मनरजन!
नही हमारा यह जीवन है
युग युग अधकार की कारा,

दूत तुम्हारा आया,
उसने नव संदेश सुनाया,
हुआ नयन से मन तक देखो
सुंदरतर उजियारा,
प्रभु ! तुम दीन शरण मनरंजन !
हम सब मानव, वह परमेश्वर,
उसके हित सब सम हैं नश्वर,
एक स्नेह की बाती रख कर
उसने दीप बनाया,
इस पर कैसी बंधन छलना
ममता है आधार, न डिगना,
सत्य बनेगा सुंदर सुपना,
प्रभु तुम दीन शरण मनरंजन !

१ **पुरुष :** तुम कौन हो भाई ?

गायक : हम श्रीवैष्णव हैं।

२ **पुरुष :** आचार्य के अनुयायी हो ?

गायक : आचार्य कहते हैं कि हमारे बंधन मनुष्य की मुक्ति को रोकते हैं। किसी का जन्म यदि निकृष्ट जाति में है तो क्या वह भगवान तक नहीं पहुँच सकता ? आचार्य अपने संप्रदाय को श्रीवैष्णव कहते हैं। वैष्णव कौन है ? जो अपने को भगवान का दास समझता है और मनुष्यमात्र को समान समझता है। वेद ब्राह्मण का है, परन्तु भगवान सब के हैं। भगवान केवल ब्राह्मणों का हो, ऐसा कुछ नहीं। यह चराचर जगत् उसी का बनाया हुआ है। यह सब उसी की लीला है। बारबार वह भगवान् इस पृथ्वी पर मनुष्य का कल्याण करने के लिये अवतार धारण करता है। अवतार का हेतु इच्छा है। दुष्कृतों के विनाश और साधुओं के परित्राण के लिये अवतार होता है। जगत् सत् है, मिथ्या नहीं है—

गीत

जगत नही है मिथ्या, सत् है,
सत् है जग यह सारा,
गिरि, नद, वन, पथ,
सागर, इति, अथ,
सब मे फैल रहा है, केवल
उसका ही उजियारा,
प्रभु तुम दीन शरण मनरजन।
जो कुछ है मधुबन की छाया,
वह है प्रिय पतझर प्रतिछाया,
उसके पीछे मधु की काया,
हो न निराश कही भी जीवन
प्रतिपग जीवनधारा,
प्रभु तुम दीन शरण मनरजन।

[जयजयकार। आचार्य रामानुज की जय ! नवागंतुकों का प्रस्थान। एक स्त्री विभोर होकर दण्डवत् करती हुई उठकर—]

१ स्त्री : आचार्य ! मै अपने पुत्र की मृत्यु पर रोती थी। मेरे स्वामी उसे माया जड़ माया कह कर मुझे डॉटते थे। प्रभु ! तुमने हॅसने-रोने का अधिकार तो दिया था। जहॉ हम रहते हैं वह ही यदि मिथ्या था तो, इतनी दुखमय सत्ता देकर भगवान क्या हमे सताने के लिये भेज देता है ?

१ पुरुष : आचार्य के शिष्य इधर भी आ गये है।

४ पुरुष : यह उनकी शिष्य मडली है।

१ स्त्री : अब तो उनके अनुयायी बढते जा रहे है।

२ पुरुष : उन्होने अनेक ग्रन्थो की रचना की है। कुरेश के पुत्र पिलान और पराशर को उन्होने आज्ञा दी। पराशर ने आचार्य के आदेशानुसार विष्णुसहस्रनाम का काव्य लिखा। पिलान ने 'तिरुम-

यम्मलो' पर एक भाष्य लिखा। आचार्य बराबर सब को योग्यतानुसार काम में लगाये रहते हैं।

[वेदनायकी सुनती रहती है। वही घड़े रख कर बैठ जाती है। एक स्त्री उसे पथ पर बैठते देख कर पास आती है।]

१ स्त्री : तुम कौन हो?

वेदनायकी : एक पति परित्यक्ता स्त्री हूँ।

१ स्त्री : तुमने क्या अपराध किया था कि उसने तुम्हे छोड़ दिया?

वेदनायकी : मेरा एक ही अपराध था कि मै स्त्री थी।

१ स्त्री : यह कैसा अपराध है, स्त्री तो मै भी हूँ।

वेदनायकी : पर तुम उसकी स्त्री हो, जो केवल स्त्री का है। मै उसकी स्त्री हूँ जो स्त्री का नहीं, ससार का है।

१ स्त्री : वह तो निश्चय ही महान् व्यक्ति है।

वेदनायकी : महान् व्यक्ति है। और मेरा यह जीवन? मै क्या करूँ। मै किसलिये अपने परिवार का सुख त्याग दूँ?

१ स्त्री : यदि पुरुष स्वार्थी हो, स्त्री को सुख न दे और आप सुख भोगे, दुराचारी हो तो स्त्री की ताड़ना ठीक है। पर जो आप भी त्यागरत हो, ससार के भले मे लगा हो, सदाचार करे, वह 'वह तो महान् है।

२ स्त्री : तुम किसकी पत्नी हो?

वेदनायकी : मै (रुक कर) मै नही बता सकती। उसका पवित्र नाम मेरा मुँह लेते हुए झिझकता है। मै इस योग्य ही नही हूँ कि उस नाम को लेकर उसे हँसी करवाऊँ।

[रोती है।]

१ स्त्री : अरे यह तो रोने लगी। आचार्य के पास ले चलो।

१ पुरुष : वे तो शल्वपिल्ले का उद्धार करने सुलतान के यहाँ गए हैं।

२ पुरुष : नही अभी नही गये, जाने वाले हैं। चलो जिनरत्न से उनका शास्त्रार्थ सुनें।

[वेदनायकी उदास सी चली जाती है।]

अंक ५

दृश्य १

[रामानुज बैठे हैं । सामने जिनरत्न हैं। अनेक जैन और ब्राह्मण एकत्र हैं। कुछ वृद्धाएं हैं।]

१ ब्राह्मण : जैन का तो मुख देखना भी पाप है।

रामानुज : शांत हो ब्राह्मणों ! तर्क वही उचित है जो कार्यकारण पर निर्भर है।

२ ब्राह्मण : परंतु तर्क के लिये आधार की आवश्यकता है। आप प्रमाण की बात करते हैं तो आपका आधार वेद है।

जिनरत्न : नहीं हम वेद को नहीं मानते। हमारी विद्या तो निरालम्ब, गगनारोहिणी है।

रामानुज : साधु। श्रमण, साधु ! मनुष्य के लिये मनुष्यत्व से बढ़ कर कोई प्रमाण नहीं। तुम वेद को नहीं मानते, परन्तु चातुर्वर्ण्य को तो मानते हो ?

जिनरत्न : वह तो समाज का नियमन है।

रामानुज : उचित है श्रमण। ईश्वर की सत्ता पर विवाद है न ?

जिनरत्न . ईश्वर का कर्तृत्व हम निश्चय ही स्वीकार नहीं करते।

रामानुज : तब तुम तीर्थंकरों की आराधना क्यों करते हो ? क्या वे अवतार या गुरु माने जाते हैं ? तुम्हारा मंदिर दूसरे खंड पर जो विग्रह धारण करता है, उसमें तुम किसकी पूजा करते हो।

जिनरत्न : तीर्थंकर की।

रामानुज : जो ईश्वर के कर्तृत्व को स्वीकार नही करते, वे क्यो अवतारवाद की परपरा में विश्वास करते हैं ? तुम सब को माया समझते हो। देह को निरन्तर कष्ट देकर, अहिसा और अस्तेय तथा निग्रह को आधार बनाते हो तो बताओ कि श्रीवैष्णव इनमे से किसे नही मानते।

जिनरत्न : किंतु वे ईश्वर को मानते है।

रामानुज : क्या तुम तीर्थंकर को श्रद्धा से प्रणाम नही करते ?

जिनरत्न : करते हैं।

रामानुज : वह भक्ति ही है, श्रमण। भक्ति अनेकरूपा है। तुम सब कुछ करके भी अस्वीकार करते हो। हम जो करते है वही स्वीकार करते हैं।

जिनरत्न : किंतु ब्राह्मणो के पुराण झूठो से भरे पडे हैं।

रामानुज : उस विषय को न छेड़ो, श्रमण। जैनपुराण कम नही हैं। आँख खोल कर देखो। मनुष्य सबसे ऊपर है। मनुष्य की भक्ति उसकी समता का प्रतीक है। तुम इसे भी मना कर सकते हो।

जिनरत्न : नहीं रामानुज !

रामानुज : (खड़े होकर) मित्र !

[जिनरत्न पाँव पर गिरता है। सब जय बोलते हैं।]

जिनरत्न : आचार्य आप हिमालय के समान शात हैं। मुझे दीक्षा दें।

१ ब्राह्मण : अरे अधर्मी नास्तिक, तू ब्राह्मण बनेगा ? चार पीढ़ी से जैन बनकर तेरे कुल ने ब्राह्मणो का नाम नीचा किया है।

रामानुज : नही ब्राह्मण देवता, जो पहिले ब्राह्मण थे यदि वे हमारे साथ है तो वह सब ब्राह्मण हैं।

सब ब्राह्मण : नही यह कभी नही हो सकता।

१ बूढ़ी : आज यह ब्राह्मण बनेंगे। कल इनकी बेटियाँ आयेंगी हमारे घरों मे तो क्या हम उनके हाथ का खा सकेंगी ! विधर्मी !

रामानुज . शात रहो ! शाति से काम लो । तुम सब जब श्रीवैष्णव हुए हो तो तुमने क्या सप्रदाय नही बदला ! क्या **पुराने लोग** तुम्हे अपवित्र नही कहते ! व्यर्थ समय नष्ट मत करो । भगवान की शरण मे आने वालों का पथ न रोको । श्रमण जिनरत्न, मै तुम सबको ब्राह्मण बनाऊँगा . . . .

१ वृद्धा : मिला लो । हम तो बहुओ के हाथ का खायेंगी भी नही ।

रामानुज . तो भी कोई बात नही माता । इतिहास कहेगा स्त्री अधिक पुराणपथी होती है । मै इन्हे अवश्य ब्राह्मण बनाऊँगा ।

[जैन और ब्राह्मण जयजयकार करते हैं । पटाक्षेप ।]

दृश्य २

[प्रासाद । राजा कुलोत्तुंग बैठा है । सामने नर्त्तकियाँ नृत्य कर रही हैं]

गीत

मृदुल चरण, चपल नही,
सँभल सभल धरूँ
बजेरे नूपुर,
नही रे भूपर,
उठे नही स्वर,
आली री मेरी
अमर शरण, विकल नही
मदिर मदिर तरू
मान विसर्जित ऐ रे विकल मन
प्राण समर्पित ऐ प्रिय जीवन
गान तिरोहित, लयमय यौवन
आली री मेरी

सकल वरण, कलुष नही,
विमुख विमुख वरूँ
मृदुल चरण, चपल नही
सँभल सँभल धरूँ ।

[नृत्य समाप्त होने पर सब नर्त्तकियाँ चली जाती हैं । प्रधान नर्त्तकी रह जाती है । पास जाकर प्रणाम करके बैठती है ।]

कुलोत्तुंग . नर्त्तकी !

नर्त्तकी . देव ! मुझे मुक्त कर दें ।

कुलोत्तुंग : क्या हुआ ?

नर्त्तकी : महाराज ! प्रासाद मे दिन पर दिन तान्त्रिको की संख्या बढ़ती जाती है । उनकी वामा साधना भी बढ रही है । मै, यह मै यह सब नही कर सकूँगी ।

कुलोत्तुंग : सुन्दरी ! तू भैरवी है । तुझे शिव के लिये अपने माया-जाल को हटा कर देखना चाहिये ।

नर्त्तकी : देवी !! क्या आप भी श्रीपर्वत के साधुओं पर श्रद्धा रखते हैं ।

कुलोत्तुंग : नही, किंतु मै शैवमात्र से प्रसन्न रहता हूँ । अन्य धर्माव-लंबियो से मुझे घृणा है ।

नर्त्तकी : किंतु देव ! अमावस्या की काली रात, मै तो उसमे श्मशान मे जाने से डरती हूँ । मै तो तन्त्र-मन्त्र कुछ जानती नही । मुझे तो यह सब केवल विलास की को भूख प्रतीत होती है ।

[एक दण्डधर का प्रवेश]

दण्डधर : देव ! परमपूज्य राजगुरु उपस्थित हैं ।

कुलोत्तुंग : सादर ले आओ दंडधर।

[खड़ा होकर स्वयं बढ़ता है । वृद्ध शैव राजगुरु का प्रवेश । कुलोत्तुंग प्रणाम करता है ।]

राजगुरु : कल्याण हो वत्स ! देख रहे हो प्रजा पागल हो रही है।

कुलोत्तुंग : ऐसा क्यो देव !

राजगुरु : रामानुज सबको शिवविमुख बनाये दे रहा है। अघोर, कापालिक, पाशुपत और वैदिक शिवोपासक, सब उसके दुर्वचनों से प्रभावित होकर श्रीवैष्णव बनते जा रहे हैं। शिव-शिव, विष्णु का नाम मुख से निकल गया।

कुलोत्तुंग : तब तो आपद्धर्म समझ कर भूल जाइये।

राजगुरु : धर्म का रक्षक राजा ही होता है, महाराज। आप यदि शात बैठे रहे तो श्रीरङ्गम् मे वैष्णवों की ही भीड दिखाई देने लगेगी।

कुलोत्तुंग : यह नही हो सकता, गुरुदेव ! जो धर्म मै मानूगा, वही मेरी प्रजा को भी स्वीकार करना होगा। आपकी आज्ञा हो तो मै श्री-रङ्गम के मदिर से रगनाथ की मूर्ति उठवा कर फिकवा दूँ।

नर्त्तकी : महाराज ! नर्त्तकी हूँ, बोलने का दुस्साहस कर रही हूँ। परतु आपका नमक खाती हूँ, अतएव मृत्यु की अवहेलना करके ही बोलने का साहस करती हूँ।

कुलोत्तुंग : क्या कहती है ?

नर्त्तकी : देव ! उस प्राचीन मदिर को हाथ लगाने से देश मे विद्रोह फैल जायेगा।

कुलोत्तुंग (**क्रोध से**) नर्त्तकी ! मै विद्रोह कुचल दूँगा।

राजगुरु : महाराज ! नर्त्तकी जनसाधारण की अकशायिनी वेश्या, उसकी बात का मूल्य ही क्या ?

नर्त्तकी : परमपूज्य राजगुरु भूलें नहीं कि मै भैरवी हूँ। साधना के समय शव के निकट बैठ कर मदिरा और मास भक्षण करने वाले अनेक शैव तात्रिक मेरी उपासना करते हैं और सिद्धि प्राप्त करने के लिये मुझे जगजननी कहते हैं, और मेरे पाँवों पर सिर धरते हैं।

राजगुरु : नर्त्तकी ! तू केवल साधना का पथ है। तूने स्वय क्या सिद्धि की है ?

नर्त्तकी : स्वय ? स्वय तो मै नर्त्तकी हूँ क्योंकि इससे अधिक अधिकार ही मुझे प्राप्त नही। किन्तु मेरे शरीर को स्वर्ग का पथ माना जाता है। और रामानुजाचार्य कहते हैं कि स्त्री पवित्र है। वह माता है। वह भक्ति की समानाधिकारिणी है।

राजगुरु : (हँसकर) और उसका सप्रदाय ही क्या है ? जितने नीच हैं उन सबको उसके वचनो का आधार मिल गया है।

कुलोत्तुंग : शैवो मे ही तुझे पाशुपतो मे समानता है।

नर्त्तकी . वही तो तान्त्रिक साधना है, महाराज ! मै भैरवी हूँ।

[मुस्कुराती है। जाती है।]

राजगुरु : देखा आपने महाराज ? इस स्त्री का दुस्साहस ! दुर्भिक्ष मे प्रजा मे लोभ बढ़ता है। विद्रोह के समय रक्त की प्यास। और जब अनाचार फैलता है तो यह नीच साँप की भाँति सिर उठा कर फुफकारते हैं।

कुलोत्तुंग : रामानुज का अत ही सुव्यवस्था का प्रारभ है। आज्ञा दीजिये गुरुदेव !

राजगुरु : कल्याण हो वत्स ! उसे सभा मे बुलाओ कि तुझ से यहाँ के शैव पडित शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और जब वह आ जाये तो थोड़ा-सा बहाना लेकर उसे प्राण दड दे दो।

कुलोत्तुंग : जो आज्ञा देव !

[दोनो दो ओर जाते हैं तब नर्त्तकी निकलती है]

नर्त्तकी : बर्बर हिस्र पशु ! हूँ , देखूँ तो कैसे तुम सफल होते हो !

दृश्य ३

[श्रीरङ्गम्। एक स्थान पर कुरेश और महापूर्ण पथ पर।]

कुरेश : भूल जाये स्वामी ! उस सबको भूल जाये। माता कहाँ हैं !

महापूर्ण : मुझे कोई क्रोध नही जगाता, कुरेश। अलमेलुमङ्गा स्वयं रामानुज से मिलने आ रही हैं। उन्हे पाथशाला मे ठहराकर आ रहा हूँ। इधर तुम्हारे पुत्रो ने बड़ी ख्याति प्राप्त की है। उसके लिये मेरी बधाई स्वीकार करो।

कुरेश : सब गुरु के चरणों का प्रताप है।

[रामानुज का प्रवेश।]

रामानुज : प्रणाम गुरुदेव ! ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हार गया। तब अभी एक शिष्य ने बताया कि आप पाथशाला मे ठहरे है। वही स्वय श्री चरणों मे उपस्थित होने जा रहा था। अहोभाग्य ! मार्ग मे ही दर्शन हो गये।

महापूर्ण : वत्स ! पर अब तुम वत्स कहाँ। अब तो तुम सन्यासी हो। आचार्य मै आपको अपना गुरु मानने लगा हूँ।

रामानुज : क्या कहते है देव ! मैने ऐसा कार्य तो कोई नही किया कि आप मुझे यो लज्जित करे !

महापूर्ण : नही सन्यासी ! यह सत्य है।

[शिष्यों का प्रवेश।]

१ शिष्य : (रामानुज से) देव आप अकेले ही आ गये !

रामानुज : हाँ वत्स ! मुझे चोलराज ने निमंत्रित किया है। शैव पडित मुझ से कुछ बात करना चाहते है। मै वही जा रहा था।

[नर्त्तकी का प्रवेश।]

नर्त्तकी : तुम सब ही सन्यासी प्रतीत होते हो। तुममे से आचार्य रामानुज कौन-से हैं !

रामानुज : मै ही हूँ। कहो।

नर्त्तकी : तुम ही चोलराज के यहाँ जा रहे हो ?

रामानुज : हाँ। क्या !

नर्त्तकी : (**हँसकर**) चले जाओ। तुम वहाँ के पडितो को कभी पराजित नहीं कर सकते। जब मैने सुना तो मुझे जिज्ञासा हो आई कि देखूँ तो वह है कौन!

महापूर्ण : लड़की! तू जानती है तू आचार्य से बाते कर रही है! तुझमे नितात उद्दडता हे।

रामानुज : ठहरे गुरुदेव! अभी बालिका है, चपल है। जिज्ञासा तो उसमे है ही। उस पर क्रोध न करें।

नर्त्तकी . आचार्य आप धन्य है। जैसा सुना था, वैसा ही पाया। आपको भी शैव गुरुओ की भाँति क्रोध आता है या नही यही देखने को मैने अनादर से बाते की थी। किन्तु आप तनिक भी विचलित नही हुए। आप महान् हैं आचार्य! आप पवित्र हैं। मै पापिनी हूँ। आपका वस्त्र भी छू सकूँ, इतना भी पुण्य मैने इस जीवन मे नही किया है। मुक्ति माँग सकूँ इतने पाप करके ऐसा साहस भी किस मुख से करूँ। बस एक प्रार्थना है।

कुरेश . क्या है बालिके!

नर्त्तकी देव! राज सभा में न जाये। वहाँ तर्क के साथ खड्ग भी है।

कुरेश : सच कहती है?

नर्त्तकी : जानती हूँ अब मेरी मृत्यु निश्चित है। राजा कुलोत्तुग मुझे कभी जीवित नही छोड़ेगे। परन्तु यह जीवन यदि मै आपके चरणो म उत्सर्ग कर सकूँगी तो इससे बढकर मेरे लिये कोई पुण्य नही होगा। वचन द गुरुदेव! आप दीनों के रक्षक हैं। आप पापियो का त्राण करने वाले हैं। यदि आप सुने कि नर्त्तकी का वध हो गया तो अवश्य ही मुझे आशीर्वाद दें कि मै अपने पापों से मुक्त हो जाऊँ।

कुरेश : तुम लौट कर न जाओ, नर्त्तकी। भाग जाओ।

नर्त्तकी : (**हँसकर**) इतनी ममता तो इस जीवन से सचमुच मुझे

नही है। मेरा जीवन जितना लबा होता जायेगा उतना ही तो मेरा पाप भी तो बढता जायेगा ?

रामानुज : नारायण ! तू धूलि मे हीरे धर कर भूल क्यों जाता है, वैभव, अधिकार यदि मनुष्य को अंधा बनाते हैं, तो तेरी गौरव-मानवता की भक्ति और श्रद्धा—मनुष्यता—इन दुखी और दीनो मे पलती है। देखने को ये कीड़ो से लगते हैं, किंतु इनके मुख से रेशम उगलता है। बालिके ! हृदय मत हारो। जीवन पाप नही है। जो पाप किया है, उसकी भी निवृत्ति है। उसका पश्चात्ताप करके दूसरों की सेवा कर करके तुम अपने हृदय को निर्मल बना सकती हो।

नर्त्तकी : नही देव ! मेरे जीवन मे पुण्य एक सयोग है। पाप मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है। मेरे रहने न रहने का भी कोई मूल्य है ? प्रणाम सन्यासी !

[दण्डवत् करके प्रस्थान]

कुरेश : आचार्य ! आप अब भी जायेंगे ?

रामानुज : क्यो नही जाऊँगा, कुरेश। वे समझेंगे रामानुज भयभीत हो गया। मै ससार को दिखाने के लिये यह सब नहीं करता, कुरेश। मै जो कहता हूँ उस पर विश्वास करता हूँ। मेरी बुद्धि मे वही तो मनुष्य के कल्याण का पथ है। मनुष्य की भक्ति ही एक शाश्वत सत्य है। भक्ति अधविश्वास नही है, कुरेश। वह ज्ञान के दीपक के समान पथ को आलोकित करती है। उस आलोक मे मनुष्य का भय दूर हो जाता है और वह निरतर चलता रहता है। भक्ति बुद्धि से स्पर्धा नहीं करती। मनुष्य का चिरसञ्चित स्नेह पाकर जो ज्ञान की शिखा जलती है। उसी से भक्ति का आलोक फूटता है।

कुरेश : परतु आचार्य ! आपका जाना ठाक नही है।

रामानुज : (हँसकर) क्यो ? वे मेरी हत्या कर देंगे इसलिये ?

महापूर्ण : क्यो नही रामानुज ! मै आज्ञा देता हूँ तुम वहाँ नही जाओगे।

रामानुज : आचार्य !!

महापूर्ण : हाँ वत्स ! यह मेरी आज्ञा है। तुम मूलत मेरे शिष्य हो।

रामापूर्ण : परतु यह कैसे हो सकता है, आचार्य ! प्राणभय क्या सत्यभय से भी बडा है ?

महापूर्ण : तुम विशिष्टाद्वैत सप्रदाय ही प्रतिष्ठा कर चुके हो, क्या तुम यामुनाचार्य के शव के सामने की प्रतिज्ञाएँ पूर्ण कर चुके हो ?

रामानुज : नही गुरुदेव ! अभी नही। अभी तो केवल एक पूर्ण कर सका हूँ।

महापूर्ण : तब मै अपने गुरु के चरणो मे कहता हूँ कि गुरुदेव ! यह महापूर्ण कुछ भी नही कर सका। आज मै राजसभा मे शैवो से मिलूँगा। गुरु की आत्मा कही असंतुष्ट न रह जाये रामानुज, यामुनाचार्य की बात अधूरी न रह जाय। उसे पूर्ण करने के पहले तुम्हे कोई ऐसा कार्य नही करना चाहिये जो व्यक्तिगत यश की लिप्सामात्र हो। तुम सप्रदाय को चलाने के लिये आवश्यक हो।

कुरेश : आचार्य ? आपकी जय हो। मै आपके साथ चलूँगा।

रामानुज महापूर्ण स्वामी यामुनामुनि के लिये वहाँ जायेंगे, कुरेश ! महापूर्ण स्वामी के लिये जायेंगे। केवल एक रामानुज ही यहाँ सप्रदाय का आचार्य रह गया है।

कुरेश . विवाद व्यर्थ है। रामानुजाचार्य नही जायेगे (**शिष्यो से**) गुरुदेव को घर ले चलो।

[**महापूर्ण और कुरेश का प्रस्थान**]

रामानुज : लीलाधर ? क्या मेरे लिये जाने वाले इन दो का तुम कुछ अहित करा दोगे ? क्या राजा इतना क्रूर हो सकता है ?

[**अलमेलुमगा का प्रवेश**]

अलमेलु : वत्स ! चिरजीव हो। सब सुन चुकी हूँ। आज मेरे स्वामी का गौरव भी देखो। तुम अभी नही जानते, वे कितने महान् हैं।

रामानुज : माता !

[पाँव छूता है। पटाक्षेप।]

दृश्य ४

[कुरेश और महापूर्ण । पथ।]

कुरेश . आचार्य ! गुरुदेव का मन क्या शात होगा ?

महापूर्ण उसकी चिन्ता मुझे नही है, कुरेश। रामानुज एक महान् व्यक्ति है। मै उसका एक गुरु हूँ। मै उसकी प्रतिभा जानता हूँ। हमारे रहते उसे ऐसे विघ्नो से जूझने की आवश्यकता ही क्या है !

कुरेश : वह तो ठीक है स्वामी !

महापूर्ण . उसने अपने जीवन मे सब कुछ तो ससार के लिये त्याग दिया है। मै यह नही भूल सकता कि यौवन मे ही जो उसने सन्यास ले लिया, वह मेरे कारण। उसकी स्त्री का जीवन मेरे कारण ही तो एकात हो गया, कुरेश।

कुरेश ' देव ! उनकी पत्नी उन्हे यह सब नही करने देती।

महापूर्ण : वह स्त्री के विषय मे एक भ्रम है, कुरेश। स्त्री कभी पुरुष की उन्नति को नही रोकती। वह उसे आगे बढाती है। तभी पूर्वजों ने स्त्री को देवी कहा है। बौद्ध और जैनों ने उसे अवश्य जघन्य माना है।

कुरेश : देव ! यतिराज शकर भी तो सन्यासी थे।

महापूर्ण : (हँसकर) जनसाधारण मे तो भ्रम है कि स्त्री माया है क्योकि माया स्त्रीलिग है। परन्तु यतिराज की माया तो जड है। वह स्त्री तो नही है ! फिर माया यदि सब कुछ है और स्त्री भी है, तो पुरुष भी तो है। जीव ब्रह्म का अश है, तु चराचर मे जो भी जगम हैं, उस सबमे उसी का अश है, फिर पुरुष भी स्त्री की भाँति माया क्यों नही है ?

कुरेश : परन्तु देव ! स्त्री होती तो क्षुद्रबुद्धि है।

महापूर्ण : यह भी दूसरा भ्रम है, कुरेश। किसी भी महापुरुष की सारी महानता उसके पास उसकी माता से ही आती है। वह ही उसे वास्तव मे सुसस्कृत करती है, उसे ममता के द्वारा मनुष्यत्व का पाठ पढ़ाती है।

कुरेश : तो स्त्री इतनी चचल क्यो होती है ?

महापूर्ण : स्त्री को देखकर जब पुरुष फिसलता है, तब अपनी खीझ को मिटाने के लिये उलटे उसे ही चचल कहता है। कुरेश ! यह कभी न भूलो कि दुःख सहने की सामर्थ्य स्त्री मे पुरुष से कही अधिक होती है किन्तु एक बात अवश्य है।

कुरेश : क्या गुरुदेव !

महापूर्ण : पुरुष स्वामी है। स्त्री का समस्त अधिकार उसके पति का अधिकार है। यदि स्त्री स्वतत्र होती तो वह पुरुष से भी अधिक अनर्थ करती।

कुरेश मै समझा नही।

महापूर्ण : वह इस ससार को ही मानती है, आकाश की ओर टकटकी लगा कर समय नष्ट नही करती, कुरेश। इसलिये कि वह माता है। यदि वह योग करने लगे तो, इस ससार का पालन कौन करे ! मेरे गुरु कहते थे ससार मे रह कर करो, जो करना है। वह जगलो मे भटक कर मत करो। जो जीवन से पराङ्मुख होते हैं, वे ही स्त्री की निदा करते हैं। यह सृष्टि है। इसमे केवल शरीर भेद से एक दूसरे के पूरक बन कर स्त्री-पुरुष है। भक्ति ही समता का आधार है। भगवान् के सामने क्या स्त्री, क्या पुरुष। दोनो ही समान हैं।

कुरेश . आचार्य ! पत्नी ने ही बाधा दी तभी तो रामानुजाचार्य ने उन्हे जाने दिया। उन्होंने तो रोका भी था। वे नही रुकी।

महापूर्ण : वह अशिक्षित थी, कुरेश। उसे कुछ सिखाने से, वह सब सीख जाती। स्त्री सत्य का मार्ग बहुत शीघ्र समझ लेती है, क्योंकि वह मूलतः सरल हृदय की होती है। उसका हृदय पुरुष से कोमल होता है।

किन्तु अशिक्षा उसे गर्व, कुटिलता और जडता की ओर प्रेरित करती है। किसी से निरतर कहते रहो कि वह मूर्ख है तो कुछ दिन बाद वह सचमुच मूर्ख बन जाता है।

कुरेश : ठहरिये आचार्य ! वह सामने प्रासाद का विशाल सिंहद्वार दिखाई दे रहा है। वहाँ सैनिक और दण्डधर घूम रहे हैं। हाथी कैसे झूम रहे हैं !

महापूर्ण : चलो कुरेश। वही चल।

कुरेश : चलिये।

[प्रस्थान। पटाक्षेप।]

दृश्य ५

[राज सभा। राज सिंहासन पर राजा कुलोत्तुंग बैठा है। पास में ही राजगुरु है। महापूर्ण और कुरेश का प्रवेश। कई शैव उपस्थित हैं। द्वार पर सैनिक खड़े हैं।]

महापूर्ण : महाराज की जय !

कुलोत्तुंग : तुम कौन हो ब्राह्मण !

महापूर्ण : देव ! मै रामानुजाचार्य का भेजा हुआ हूँ। महाराज ने स्मरण किया था इसलिये उपस्थित हुआ हूँ। मै महापूर्ण हूँ। यह कुरेश है।

राजगुरु . (**हँसकर**) तो तुम्ही यहाँ के पण्डितो से शास्त्रार्थ करने आये हो !

कुरेश देव ! महापूर्ण स्वामी परम विद्वान है।

[दो दडधर नर्त्तकी को पकड़ कर लाते हैं। वह हँस रही है।]

कुलोत्तुंग : दडधर ! इसका अपराध !

दडधर : देव ! रामानुज को इसी ने जाकर सूचना दी थी कि यदि वह सभा मे आयेगा तो उसे प्राणभय है।

कुलोत्तुग : (**क्रोध से खड़ा होकर**) नर्त्तकी ! तूने विश्वासघात किया !

नर्त्तकी : नही राजा । कल मुझसे शिव ने स्वप्न में कहा.. .

राजगुरु : (डाटकर) नर्त्तकी !!

नर्त्तकी : (हँसकर) राजगुरु ! मै भैरवी हूँ न ! जब दिन और रात मे जागते मुझे जीते-जागते अनेक शिव मिलते हैं तो एक स्वप्न में नही मिल सकते !

राजगुरु दुस्साहसिक ! दुस्साहसिक !

नर्त्तकी · मैने राजा की रक्षा कर ली है, राजगुरु ! तुम उन्हे भयानक विश्वासघात की ओर खीच रहे थे। तुमने रामानुज को शास्त्रार्थ को बुलाकर उनकी हत्या कर देने की आयोजना की थी। नृशस राजगुरु ! मैने तुम्हारा घरौदा एक ठोकर से गिरा दिया।

कुलोत्तुंग : नर्त्तकी ! तू जानती है, तू क्या कह रही है ? दंडधर ! इसे विनय सिखाओ।

[दंडधर उसके हाथ मरोड़ता है। नर्त्तकी पीड़ा से कराहती है।]

नर्त्तकी : (हँसकर) तुम समझते हो मै डर जाऊँगी ? मै नर्त्तकी हूँ, पापिनी हूँ, किन्तु तुम लोगो की भाँति पशु नही हूँ। मै मनुष्यत्व भूल नहीं गई। मदान्ध भेड़ियो, मै मृत्यु से भी नही डरती।

महापूर्ण : नर्त्तकी ! तू देवी है। मै त्रिकालज्ञ को साक्षी करके कहता हूँ। आज मै तेरे समस्त पापो को जनमातर तक भोगने के लिये अपने ऊपर लिये लेता हूँ। रामानुज ! यदि गुरु मे तुम्हारी भक्ति है, यदि मनुष्य को तुमने प्रेम किया है तो इस स्त्री के हृदय मे यह विश्वास जगाओ कि यह स्त्री पापिनी नहीं है। यह विवश है, इससे ससार ने इसके भोलेपन के कारण अत्याचार किया है।

नर्त्तकी : आचार्य ! दोना हाथ बँधे हैं तभी प्रणाम नही कर सकती। क्षमा करेगे, किन्तु सिर झुका कर दण्डवत् करती हूँ। स्वीकार करे।

कुरेश राजा तू अन्यायी है। तू ऐसे-ऐसे फूलो को कुचल रहा है ? तेरा यह अधिकार भी बहुत दिन नही चलेगा। यह राजगरु जो लोलुप

बन कर तुझे पाप और हिंसा की ओर प्रेरित कर रहा है, यह धार्मिक व्यक्ति नही। इसका धर्म राजशक्ति है, धन और अधिकार का मद है। यह मनुष्य नही है। मै यह सब नहीं देख सकता।

कुलोतुंग . सैनिको।

[सैनिक तुरंत महापूर्ण और कुरेश को पकड़ लेते हैं।].

कुलोत्तुग : नही देख सकते ?

महापूर्ण · कभी नहीं। यह भयानक अत्याचार है।

[कुलोत्तुंग नर्त्तकी की ओर इंगित करता है। दंडधर उसे ले जाते हैं। नेपथ्य से नर्त्तकी की भयानक हँसी सुनाई देती है। वह अंत में चीत्कार करती है। फिर शांति छा जाती है।]

कुलोत्तुंग : सुना ! उसका अत हो गया।

कुरेश . मूर्ख ! वह अमर हो गई। वह अपनी विजय से ससार को जगा गई।

महापूर्ण : नर्त्तकी ! तुम धन्य हो। हमारे रहते हुए तुमने आचार्य के लिये प्राण त्याग दिये। तुम महान हो ! हम तुम्हे श्रद्धा से प्रणाम करते हैं।

[गाता है]

अभूतपूर्वम् मम भावि कि वा
सर्वम् सहे मे सहजम् हि दुखम्
कितु त्वदग्रे शरणागताना
पराभवो नाथ न तेऽनुरूपः[1]

---

१ स्तोत्ररत्नम् सेः मुझ पर क्या दुख नही पडा जो कुछ भी नया रह गया हो ? सब सह लूँगा, दुख तो मेरे साथ सहज ही है। परंतु आपकी शरण मे आये हुये का आपके सामने ही अपमान हो, यह आपको शोभा नही देता।

[राजगुरु कुलोत्तुंग के कान में कुछ कहता है। कुलोत्तुंग एक सैनिक को बुलाकर उसके कान में कुछ कहता है। सैनिक का प्रस्थान।]

कुरेश : राजा ! भगवान ही तुझे बुद्धि दे।

कुलोत्तुंग . भगवान तुझे बुद्धि देगा मूर्ख ब्राह्मण। ले जाओ इन्हे निकाल लो इनकी आँखे। फिर यह कभी अत्याचार नही देख सकेंगे ....

[राजगुरु अट्टहास करता है। फिर कुलोत्तुंग भी हँसता है। सब ठठा कर हँसते हैं।]

महापूर्ण (हँसकर) मूर्ख तू समझता है, तू हमे डरा लेगा ? रामानुज ! जो मन की आँखें तुमने दी हैं, उनके रहते यह आँखें हैं ही क्या ?

कुरेश : महापूर्णस्वामी ! आज जीवन धन्य हो गया !

कुलोत्तुग : आँखे निकाल कर इन्हे प्रासाद के बाहर राजमार्ग पर छोड़ दो। यह लोग चले जायेंगे।

[सैनिक खींच कर ले जाते हैं।]

राजगुरु : धन्य हो महाराज ! आप जैसा रक्षक किस धर्म को मिलता है !

कुलोतुंग : यह भी ठीक हुआ गुरुदेव !

[नेपथ्य में कुछ कराहने का शब्द।]

राजगुरु : सुना आपने महराज . .

[अट्टहास करता है। सब ठठा कर हँसते हैं। राजा गर्व से सिंहासन पर हँसता है। बाहर तूर्यनिनाद होता है। पटाक्षेप।]

दृश्य ६

[घर। रामानुज बैठे हैं। नेपथ्य में घंटे बज रहे हैं।

अलमेलुमङ्गा खड़ी है। महापूर्ण और कुरेश प्रवेश करते हैं। वे अधे हैं। आँखों में से रक्त बह रहा है।]

रामानुज : (खड़े होकर) गुरुदूव !

महापूर्ण : (मुस्करा कर) शात रहो रामानुज ! शात रहो ! इन आँखो को यही दड मिलना ठीक है। आज बड़े गौरव का दिन है।

अलमेलु : गौरव ? आज मै बहुत प्रसन्न हूँ स्वामी ! आज अभिमान से सिर ऊँचा हुआ जा रहा है मेरा। आज आप अपने गुरु यामुनामुनि की कीर्त्ति को उज्ज्वल करके रामानुज पर आने वाली विपत्ति को अपने ऊपर झेल आये हैं। इससे बढकर गर्व की बात मेरे लिये और क्या होगी ?

रामानुज माता ! तुम तो रोई भी नहीं ?

अलमेलु : सन्यासी तुम विचलित हो रहे हो ?

रामानुज : माता। यह दुख सब मेरे ही कारण तो पड़ा ?

अलमेलु नही वत्स ! तुम्हारे गुरु का धर्म था कि प्राण रहते तुम्हारी रक्षा करते। जो उन्होने सिखाया है, वही तो तुममे पल्लवित हो रहा है। बीज को तो तुम्हारे विकास के लिये दो टूक होना ही था। फिर अत्याचार के सामने सिर झुका देना क्या धर्म है ? आँखे तो मेरे पास हैं वत्स। मेरे स्वामी के हृदय मे स्नेह के चक्षु है। हम दोनो आज पूर्ण हुए।

[बढ़ कर महापूर्ण को दण्डवत् करती है। और उठ कर कुरेश को हृदय से लगाती है।

अलमेलु . (कुरेश से) पुत्र ! तू धन्य है। तूने अपने गुरु के साथ हो अभय होकर प्रलय को झेला है। तू भी धन्य है। रामानुज देखते हो ? आज मै कितनी प्रसन्न हूँ, मै कैसे बताऊँ ?

महापूर्ण : अलमेलु ! स्त्री को स्त्री से ईर्ष्या होती है। तभी उस दिन तुम वेदनायकी से क्रुद्ध हो गई। आज तुम प्रसन्न हो ? मै जानता था

अलमेलु ! जीवन में आज तुम मुझे देखकर अवश्य प्रसन्न हो उठोगी। मै तुम्हे जानता था!

कुरेश : रामानुज ! हम लोग कुछ भी नही है। जीवन भर गुरु वचनो को सुन-सुन कर भी मनुष्य का क्या कल्याण किया ? कुछ नही। किन्तु वह नर्त्तकी धन्य हो गई।

महापूर्ण : जब तक मनुष्य मे कृतज्ञता जीवित रहेगी तब तक नर्त्तकी का बलिदान भी अमर है।

अलमेलु : क्या हुआ उसे ?

महापूर्ण : कुलोत्तुग ने उसे प्राण दण्ड दिया ! वह निर्भय हँस कर मर गई ! परतु झुकी नही।

अलमेलु : (**आँखों में आनन्दाश्रु भर कर**) वह मेरी पुत्री थी, स्वामी ! वह तुम्हारी पुत्री थी। कैसा शुभ दिन है। मुझे लगता है, यह ससार एक बड़ी शक्ति को धारण किये है। मनुष्य अपने सत्य के लिये हँसते-हँसते बलिदान देना जानता है। वह पाप, अहकार और अत्याचार से पराजित नही होता। नही स्वामी ! नही पुत्र ! नर्त्तकी तुम सबमे महान् थी। तुम जीवन सुखो मे रहे, वह बिचारी दासी ! सब उससे घृणा करते थे। अब भी उसे क्या सुख मिलता ? परतु अत्याचार वह नही सह सकी।

रामानुज : माता ! वह सचमुच महान् थी। गुरुदेव, यह आपने क्या किया ? रक्त बह रहा है माता !

अलमेलु : धैर्य धरो रामानुज ! यह रक्त नही है। यह मेरे पति के नयनों के द्वार से वह स्नेह उमड रहा है जिसे नयन रोक रहे थे। यह रक्त सत्य की ज्वलत गाथा लिख रहा है।

रामानुज : लीलामय ! तू अपार है। इस ससार में तूने ऐसे-ऐसे महान् व्यक्ति बनाकर उन्हे कैसी सरलता से ढँक दिया है जो वे यह भी नही कहते कि वे कितने श्रेष्ठ है, कितने ऊँचे हैं। मनुष्य की श्रेष्ठता

जन्म, कुल, अधिकार और धर्म मे नही होती । उसकी महानता, उसकी मानवता है, उसका मनुष्य प्रेम है ।

[दो शिष्यो का भयभीत होकर प्रवेश ।]

१ शिष्य : आचार्य !

रामानुज : क्या है वत्स !

२ शिष्य : देव ! चोलराज कुलोत्तुग के सैनिक आपको पकडने आ रहे है ।

रामानुज : आने दो वत्स भयभीत क्यों हो !

महापूर्ण : रामानुज !

रामानुज : देव !

महापूर्ण : तुम तुरंत यहाँ से चले जाओ ।

रामानुज : (हँसकर) बहुत ठीक आप यही रहेगे !

अलमेलु : तुम्हे तुम्हारे गुरु के शव के समीप की हुई प्रतिज्ञाओ की शपथ है, रामानुज । चले जाओ । तुम सन्यासी हो, निर्भीक हो, मृत्यु से नही डरते, किंतु यश और अभय रहने की तृष्णा से भी बडा है कर्त्तव्य । तुम तुरन्त चले जाओ क्योकि यदि नही जाओगे तो चोलराज के सैनिक तुम्हारा बध कर देगे ।

महापूर्ण : यदि तुम्हारी हत्या से ससार का कल्याण होता हो तो अवश्य हत्या हो जाने दो वत्स । पर चोलाधिकार दो दिन का है । वह आँधी को भाँति आया है, आँधी की भाँति चला जायगा । मनुष्य का बुद्धि से काम लेकर कार्य करना भीरुता नही । यदि वह अपने व्यक्तित्व के स्वार्थ को किसी महान् कार्य के लिये त्याग चुका है ।

[दो और शिष्यों का प्रवेश ।]

१ शिष्य . आचार्य ! सैनिक आपके अनुयायियो पर अत्याचार कर रहे हैं ।

रामानुज : वत्स !

कुरेश : और वे क्या कर रहे हैं !

२ शिष्य : वे हँस-हँसकर सब झेल रहे है। उन्होने ही हमे भेजा है कि आचार्य को किसी सुरक्षित स्थान मे भेज दिया जाये।

अलमेलु : सुन रहे हो ! अब भी नही मानोगे।

महापूर्ण : वत्स, स्थिति को कौन नही समझता ! रामानुज ! रामानुज सुनते हो यह सब क्या हो रहा है।

रामानुज : कहे गुरुदेव !

महापूर्ण : शल्वपिल्लै बुला रहे हैं। सुल्तान के यहाँ से उनका उद्धार करके लाओ। वहाँ भी प्राणभय है। तुम्हारा वहाँ भी जाना पूर्ण आवश्यक है।

अलमेलु : चले जाओ वत्स ! तुम्हे तुम्हारे अनुयायियो की इच्छा पूर्ण करनी चाहिये।

रामानुज : तो यही सही ! माता मै जाऊँगा। उस सुन्दर शल्वपिल्लै को छुड़ाकर लाऊँगा। मेरा भगवान वहाँ बन्दी है। उसे छुड़ाकर लाऊगा। तुम साक्षी हो कि मैने गुरु की आज्ञा को नही टाला।

महापूर्ण : रामानुज ! तुम वीर हो। जो सद्बुद्धि को नही छोड़ता, वही वीर है। आपत्ति सब पर पड़ती है।

अलमेलु : समय नष्ट न करो। प्रस्थान करो।

[**रामानुज का प्रस्थान**]

अलमेलु : (रोकर) भगवान् ! चारो ओर भयानकता छा रही है। यह क्या हो रहा है।

[**सैनिको का प्रवेश।**]

१ सैनिक : अरे यह तो वही है।

२ सैनिक : कहाँ है रामानुज ?

अलमेलु : उन्हे भगवान ने बुलाया है। वे चले गये।

३ सैनिक : (**हँसकर**) चलो बला टली। बिना श्रम के ही सब कष्ट दूर हो गया।

१ सैनिक : (**महापूर्ण से**) अब तो तीनो लोक दीख रहे होंगे।

२ सैनिक : छोड़ो इस बूढे को। वहाँ नर्त्तकी रंभा बैठी होगी। राज की नौकरी तो आनद भी नहीं करने देती।

३ सैनिक : यहाँ तो सब साधू ही साधू दिखाई देते हैं।

[**अट्टहास करते हुए प्रस्थान** ।]

महापूर्ण : नारायण ! मेरे रामानुज की रक्षा करना।

[**सब प्रार्थना में झुकते हैं। पटाक्षेप**]

———

अंक ६

[विष्कंभक]

[पथ]

रामानुज : पथिक !

पथिक : क्या है सन्यासी महाराज ?

रामानुज : बड़ी दूर से चल कर आया हूँ। यहाँ निकट ही कोई ग्राम है। बड़ी प्यास लगी है। कही पानी मिल सकेगा ?

पथिक : वह है तो वहाँ जलाशय !

रामानुज : साधु पथिक ! तुम्हारा कल्याण हो।

[बढ़ते हैं।]

पथिक : महाराज। आप कहाँ से आते हैं ?

रामानुज : सारा जीवन सारा ससार एक चलचक्र है, पथिक। निरतर कार्यरत मनुष्य का कही आदि और कही अन्त है ? कही नही।

पथिक : मेरे घर चल कर आतिथ्य स्वीकार करें।

रामानुज : मेरे पथ के स्नेही बधु ! तुम्हारा मगल हो। परतु मै देवता के काम से जा रहा हूँ। वे मुझे बुला रहे हैं। इस समय मुझे जाना ही उचित है।

[प्रस्थान। पटाक्षेप।]

अंक ६

दृश्य १

[कुछ सैनिक घूम रहे हैं। घूमते हुए वे दूसरी ओर निकल जाते हैं। तब सामने के तम्बू में से कुछ गीत सा सुनाई देता है। उस समय एक नर्त्तकी हाथ में ढफ लिये नाचती आती है। वह अर्द्धनग्न है जैसे मदिरामत्त है। वहाँ कई सैनिक आ जाते हैं। यह सब मुसलमान हैं।]

१ सैनिक : वाह ! क्या हुस्न पाया है। अल्लाह क़सम नूर टपक रहा है।

२ सैनिक : जल्ले जलालहू। मुल्तान से दक्खिन तक घूमती यह नर्त्तकिया कमाल करती हैं।

३ सैनिक : क्यों री, तू अभी हिंदू है या मुसलमान ?

नर्त्तकी : मै नट हूँ। मेरी माँ जोगन है।

१ सैनिक. वाह दिलरुबा ! तू तो मेरे दिल की रस्सी पर चल रही है। लक्कदक्क ! लक्कदक्क ! (**चलता है**) मसो पर तिल है हल्का सा, अभी सिन सोलह का है। भँवर से सियाह तेरे गेसू, मेरे दिल पर साँप लोट रहा है।

२ सैनिक : जल्ले जलालहू।

३ सैनिक : कैसी गबरू जवानी है। मस्ती का अँधेरा घुप, तेरी शान मे चोटी को गुंध; प्यारे हाथो मे मेहदी रची है, गोरे-गोरे पाँव, तेरी पतली कमर, रसीली कटीली तेरी आँखें।

२ सैनिक : जल्ले जलालहू ! जल्ले जलालहू ।

नर्त्तकी : कौन सा गीत सुनाऊँ ? जोगी का गीत, या रसीले एक रसिया ? या वह जो तुम समझो । बोलो ! इनाम लूँगी !

१ सैनिक : इनाम ! दूध पियो मेरी कटार, बदले मे उगलो ज़हर ।

[नर्त्तकी ढफ बजाकर नाचती है । सैनिक मस्ती से देखते हैं । ढफ की आवाज़ पर घुँघरू बोलते हैं ।]

नर्त्तकी : गीत

अगूरी नही हूँ
मै तो काफ़ूरी शमा हूँ,
ए रे रात भर जलूँगी !
झूम के बोले जो पपीहरा—पी कहाँ
ज्ञान निसारूँ मै तो सेजपै पी जहाँ,
पार के काजर, कटाछ मार धीरे धीरे
नई हूँ नवेली सच बोल उठूँ—पी कहाँ,
अगूरी नहीं हूँ मै तो काफूरी शमा हूँ ए रे रात भर जलूँगी

१ सैनिक : वल्लाह ! क्या लोच है । हिंद मे अदा के सिवाय कुछ है ही नहीं । गुले-लाला है ! गुले-लाला !

नर्त्तकी : गीत

चूमके बोले कोई गुल को बख़्शाश सा हो
टोक के बनियाँ न करे देख के अहसास सा हो
क़त्ल आलम को किये छतियाँ उभार धीरे
नई हूँ नवेली सच बोल उठूँ पी कहाँ,
अगूरी नही हूँ मै तो काफूरी शमाँ हूँ
ए रे रात भर जलूँगी !

[वाह, वाह का कोलाहल। सब उसे इनाम देते हैं।]

१ सैनिक : उधर चलोगी नही, खेमे की तरफ?

नर्त्तकी : ऐ हये चुन्नाशाह! मेरा मालक मुझे ढूँढ रहा होगा।

[हँसती है।]

२ सैनिक : जल्ले जलालहू! हम तो हिंद आकर सचमुच बुतपरस्त हो गये।

[हास्य। वह नर्त्तकी आगे-आगे जाती है। उसके पीछे-पीछे सैनिक जाते हैं। गीत का स्वर गूँजता है—

मैं तो काफ़ूरी शमा हूँ।
ए रे रात भर जलूँगी!]

[पटाक्षेप।]

दृश्य २

[एक तम्बू के पास धुँधले से मशाल के प्रकाश में रामानुज खड़े हैं।]

रामानुज : चारो ओर अँधकार छा रहा है। आकाश के नक्षत्रों! क्या है इस मायाविनी निशिचरी के अंतर मे, वह तुम भी नही देख पाते!

[जागते रहो, रात्रि प्रहरी का स्वर। कुछ सैनिक घूमते हुये आते हैं। रामानुज छिप जाते हैं।]

१ सैनिक (सामने दाई ओर देख कर) अरे शहज़ादी साहिबा अभी तक जाग रही है।

२ सैनिक : (धीरे से) सत्रह साल की उम्र हो गई मगर अभी तक इनका बचपन ही नही गया।

३ सैनिक : वह हिंदुओं की एक मूर्ति है न, कृशन की है या जाने किसकी है, उसी से खेला करती है।

[जाते हैं ।]

रामानुज : **(निकलकर)** शाहजादी जाने यह लोग क्या कहते थे। समझ मे नही आया ठीक से। क शन तो वही कृष्ण है।

[नेपथ्य से-जागते रहो। रामानुज चौंक उठते हैं। कोई नहीं आता।]

रामानुज : कितनी निःशब्द रात्रि है। चारों ओर सब सो रहे हैं। यही तो हैं शल्वपिल्लै। प्रभु ! तुम्हारा यह दास तुम्हे कब से ढूँढ रहा है। वह सामने शिविर मे कुछ आलोक है।

[सैनिको की पगध्वनि। रामानुज छिपते हैं। वे ही सैनिक आते हैं।]

१ सैनिक : इब्राहीम ! मै तो सोने जाता हूँ।

२ सैनिक : जल्ले जलालहू ! पहरा कौन देगा !

[रामानुज बाहर आते हैं।]

१ सैनिक : तू कौन है !

रामानुज : भिक्षुक !

२ सैनिक : क्या बकता है। लगता है कोई फकीर है, बूढा हो चला है।

[रामानुज हाथ से इंगित करते हैं जैसे याचक हैं ।]

१ सैनिक : अरे जा जा, न जाने कहाँ से आ गया !

२ सैनिक : जाता है या नहीं।

[धक्का देता है।]

रामानुज : लीलामय ! तेरी लीला का कही अन्त नही है। आज तेरे लिये ही तो आया हूँ और तेरे द्वार पर पहुँचने पर तेरा ही दूसरा रूप मुझे धक्के देकर निकाल रहा है।

[रामानुज अंधकार में जाते हैं।]

१ सैनिक . यार, बड़ी अन्धेरी छा रही है।

२ सैनिक : सुनते हैं उत्तर मे ईरान से भी मुसलमान आने लगे है।

३ सैनिक : तभी तो यहाँ अरबों को भी तुर्क कहते हैं और हमारे सिपहसालार को सुल्तान।

[सब हँसते हैं।]

१ सैनिक : चलो उधर चलें। चौकीदार ने बोलना क्यों बद कर दिया।

[तभी चौकीदार की पुकार आती है—जागते रहो।]

२ सैनिक : बड़ी उम्र पाई है ज़ालिम ने।

[प्रस्थान। रामानुज निकलते हैं और इधर-उधर ढूँढ़ते है। पटाक्षेप।]

दृश्य ३

[एक खेमे में एक सुन्दर शाहज़ादी सो रही है। उसके पास शल्वपिल्लै की मूर्ति है। दो एक बाँदियाँ सो रही हैं। रामानुज खेमे में घुसते हैं। शल्वपिल्लै को देखकर बड़ी भक्ति से विह्वल होकर देखते हैं। उनकी आँखो से आँसू बहते हैं। फिर वे बढ़कर मूर्त्ति को उठाते हैं। शाहज़ादी भाग जाती है।]

शाहज़ादी : कौन है ?

रामानुज : मै हूँ। मै ...

[मूर्ति को आंनदातिरेक से हृदय से लगा लेते हैं]

शाहज़ादी : बूढे तू कौन है ?

रामानुज : मै इसका दास हूँ।

शाहज़ादी (हँसकर) यह तो खिलौना है बूढे।

रामानुज : नही। यह मेरा भगवान है।

शाहजादी : (हँसकर) भगवान ! तू जानता है मुझे यहाँ की चीज़ों से बड़ा शौक है। मैंने आकर दक्खिनी बोली सीखी है। लेकिन तेरा यह भगवान तो कभी बात भी नही करता।

रामानुज : वह बात नही करता तो मुझे यहाँ खीच लाता ?

शाहजादी : पर यह खुद तुझ तक तो गया नही ?

रामानुज : इसलिये कि इसकी सेवा तुम करती रही।

शाहजादी : सेवा ? मै तो इससे खेलती थी।

रामानुज : हाँ बेटी। भगवान बालको से बडा प्रेम करते हैं। जब बालक पास मे हो तो वे किसी की याद नही करते।

शाहजादी : लेकिन तू अंदर घुस आया, तुझे सिपाहियों ने रोका नही ?

रामानुज : रोका तो था, परतु उनमें मुझे रोकने की सामर्थ्य नही थी। मुझे भगवान जो बुला रहे थे।

शाहजादी तो क्या तू इसे लेने आया है ?

रामानुज : हाँ शाहजादी। इसे हृदय मे रखकर इसकी प्रतिष्ठापना करूँगा। मुझे इससे बहुत प्रेम है। यह दुखियों का बड़ा रक्षक है।

शाहजादी : दुखियो का रक्षक है ! सच कहता है तू हिंदू ! मै नही जानती मुझे यह क्यो इतना अच्छा लगता था ! पर इसे मै तुझे नही ले जाने दूँगी।

रामानुज . मेरी वस्तु को तुम मुझसे नही छीन सकोगी। यह मेरे बुलाने पर स्वय मेरे पास आ जायेगी।

[रोते हैं।]

शाहजादी : अरे ! तू तो रोने लगा। क्या नाम है तेरा ?

रामानुज मेरा नाम ? रामानुज है।

शाहजदी : (**चौंक कर**) रामानुज ! यह नाम तो सुना हुआ सा

लगता है। आप (उठती है) आप रामानुज हैं। सारे दक्खिन मे आपको लोग सिर झुकाते है।

रामानुज · चिरजीव हो पुत्री। तुम्हारा कल्याण हो। सौभाग्यवती हो। अब मुझे जाने दो।

शाहजादी . कहाँ जाते हैं? यह मूर्त्ति आप नही ले जा सकते।

रामानुज . रोको नहीं शाहजादी। इसके बिना मेरा जीवन विकल और व्यर्थ है।

शाहजादी : लेकिन इसके बिना मै भी नही रह सकती।

रामानुज : (**आश्चर्य से**, क्या कहा तुमने? (**रोते हैं**) तुम्हारा इतना प्रताप है? यह लड़की तुम्हे कुछ भी न जान कर भी तुमसे इतना स्नेह करती है?

शाहजादी : बिरहमन!

रामानुज : बीबी।

शाहजादी : (**अपनी आँखे पोछ कर**) ले जाओ बिरहमन! तुम इसे ले जाओ। तुम्हारी आँखो के आँसू मुझसे नही देखे जाते। तुम इसी के लिये जान पर खेल कर यहाँ आये हो?

रामानुज : इसी के लिये आया हूँ।

शाहजादी : जाओ बिरहमन। इधर से चले जाओ।

[रामानुज का प्रस्थान। नेपथ्य में—कौन जा रहा है? चोर! चोर! पकड़ो! पकड़ो! कई लोगो के इधर-उधर भागने का शब्द होता है। बाँदियाँ जाग उठती हैं। एक सैनिक का प्रवेश।]

सैनिक : हुजूर, अभी तक जाग रही है।

१ बाँदी : यह क्या शोरगुल हो रहा है?

सैनिक : कोई चोर था।

शाहजादी : नही चोर नही था। वह एक बूढ़ा पंडत था। वह अपनी मूरत लेने यहाँ आया था।

२ बाँदी : ले गया ?

सैनिक : गज़ब हो गया। सुल्तान बड़े नाराज होंगे।

[प्रस्थान]

१ बाँदी : तो वह तो अभी पकड़ा जायेगा।

२ बाँदी : इसमे क्या शक है, शाहजादी साहिबा ! आपने उसे रोका नही ?

शाहज़ादी : वह उसी की चीज थी। उसे वह ले गया। किसी का यकीन कोई मिटा सकता है ?

१ बाँदी : आप क्या कह रही है ?

२ बाँदी : शाहज़ादी साहिबा !

शाहजादी : मेरी जिंदगी मे वह दिन कैसा होगा जब मै जाकर देख सकूँगी कि उसने उस मूरत को कितनी मुहब्बत से उसकी अपनी जगह सजा कर फिर रख दिया है।

[पटाक्षेप]

दृश्य ४

[भयभीत से रामानुज एक घर में घुस आते हैं। वहाँ मंदिम प्रकाश फैलाता एक दीपक टिमटिमा रहा है। रामानुज के घुसते ही धरती पर सोये तीन प्राणियों में से एक जाग उठता है। वह कुप्पन है।]

रामानुज : कुप्पन् ! भक्त प्रवर ! तुम यहाँ ?

कुप्पन : आचार्य्य ! आप ? चमारा की बस्ती में ?

रामानुज : हाँ कुप्पन्, द्वार बंद कर दो।

[जाकर द्वार बंद करके चित्री और मुरुगन को जगाता है। वे उठ कर चौंक कर देखते हैं। फिर प्रणाम करते हैं।

लेकर आ गई और जब मैंने पति को उसका मृत बालक दिया, तो ब्राह्मण मुझ पर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने हमे मार कर निकाल दिया।

रामानुज : वह पाप था चित्री ! वह पाप था। उस पाप का प्रायश्चित करने के लिये ब्राह्मणो को भयानक मूल्य देना होगा। शल्व प्रिल्लै ! तुम भी अद्‌भुत् हो। यह नारियल के पत्तो की छत, यह कच्ची दीवारे, यह चमारों की बस्ती, पर यह तो ब्राह्मण का आश्चर्य है। तुम तो सदैव ही दुखी और दीनो के घर जाते रहे हो। तुम ही तो दीनो के एक मात्र सहारे हो।

कुप्पन : प्रभु ! देवी तो कुशल से हैं।

रामानुज : देवी ! मै अब सन्यासी हूँ कुप्पन ! वह चली गई। वह भगवद्भक्तो से अप्रसन्न रहती थी। वह सुख का जीवन चाहती थी। मुझे कर्त्तव्य अपने आप से भी ऊँचा दिखाई देता था। कोई सामजस्य नही हो सका। हमे अलग होना पड़ गया।

[नेपथ्य में अश्वारोहियों का घोड़े-दौड़ाने का शब्द। फिर कोलाहल।]

मुरुगन मै जाकर देखता हूँ।

[जाता है। चित्री द्वार बन्द कर लेती है।]

चत्री : प्रभु अतिथि हैं। पर एक बात पूछना चाहती हूँ।

रामानुज : पूछो चित्री।

चित्री : आज यदि हम ऐसे ही कही ब्राह्मण के यहाँ आश्रय खोजने जाते तो ?

रामानुज : वह अपने घर को अपवित्र करने के स्थान पर तुम्हे शत्रु के हाथ सौप देता।

चित्री तो आप यह जानते हैं ?

रामानुज : क्यों चित्री ? तुम समझती हो, मनुष्य की दारुण व्यथा और अपमान को देख कर मै नही समझ सकता ? कही नही लिखा है

कि मनुष्य मनुष्य के साथ इतना अत्याचार करे। यदि यही होता तो भगवान श्रीकृष्ण कदापि नही कहते :

ईश्वर सर्व भूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति,
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया[1]।

जब वह सब मे स्थित है तो फिर उसका पराया कौन है ?

कुप्पन : प्रभु, आप विश्राम करे। थक गये होगे।

रामानुज : विश्राम ? कहाँ है विश्राम भक्तप्रवर। सारा जीवन एक अनथक परिश्रम है। कही भी चैन का अवसर दिखाई नही देता।

चित्री : तो क्या यह सारा जीवन दुखी ही है ?

रामानुज : दुख मनुष्य के बनाये हुये है चित्री, अपनी ही ज्वाला मे ही वह जला जा रहा है।

[मुरुगन द्वार थपथपाता है। चित्री खोलती है। मुरुगन का प्रवेश। द्वार बंद करती है।]

मुरुगन : अभी तो यहाँ कोई नही आया।

कुप्पन : यहाँ कोई क्यो आयेगा ?

रामानुज : क्यो तुम सब भी तो उसी धर्म के हो ?

चित्री : किंतु हम चमार भी तो हैं प्रभु !

[रामानुज सिर झुका लेते हैं।]

चित्री प्रभु ! आप कुछ देर विश्राम करें। क्या करे ? हम नीच है, अन्यथा कुछ प्रबन्ध करते। कुछ भोजन जल देकर आपका धर्म भ्रष्ट कर दे तो, हम तो अपने लिये नरक का पथ नही खोलना चाहते। पापी हैं और पापी बने ?

---

१ क्योकि हे अर्जुन ! शरीर रूप यन्त्र मे आरूढ हुए संपूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मानुसार भरमाता हुआ सब भूत प्राणियो के हृदय मे स्थित है।

रामानुज : कौन कहता है तुम नीच हो? किसने कहा तुम पापी हो?

चित्री : पूर्व जन्म मे पाप न किये होते तो क्या भगवान इस जाति मे जन्म देता?

रामानुज : चित्री! खेद न कर! जीवन दुख नही है। आनन्द है। यह दुख, यह व्यथा, एक करुणा से सिक्त अश्रु के समान आनन्द और छविमय के गाल पर बह रहे है। मै नही जानता यह सब क्यो होता है? परन्तु एक बात जानता हूँ, ब्राह्मण का दम्भ बहुत बढ़ गया है।

कुप्पन . प्रभु सोये। अभी कुछ देर बाद चलना होगा।

रामानुज . मेरा शल्वपिल्लै?

कुप्पन : आप सोये प्रभु। मै देखकर उनकी सेवा मे प्रहरी की भाति जागता रहूँगा। आप इनके लिये प्राणों का भय त्याग कर आये हैं, मै इतना भी नही कर सकूँगा।

[रामानुज लेटते हैं। चित्री एक कपड़ा देती है।]

चित्री : इसे सिर के नीचे लगा लें।

[रामानुज सिर के नीचे रखते हैं। पटाक्षेप]

दृश्य ५

[मुसलमान सैनिक घूम रहे हैं।]

१ सैनिक : इधर आओ, इधर।

२ सैनिक : उधर तो चमारो की बस्ती है।

३ सैनिक : चमारो की बस्ती है? तो वहाँ क्यों जा रहे हो?

१ सैनिक : देख लें शायद बिरहमन वही गया हो।

३ सैनिक : (हँसकर) खूब रहे। अगर इस मुल्क मे यही होता तो यहाँ हमारी जड़ें जमतीं? बिहरमन और चमारों की बस्ती मे? मर जायगा, ग़ारत हो जायेगा, लेकिन चमारों से नहीं मिलेगा।

२ सैनिक : कहाँ जा रहे हो बेकार ? ब्रिरहमनों को देखा नही उनके मुहल्ले में हम जा सकते हैं, मगर चमार नही जा सकता। पहले तो चमार पुकार-पुकार कर आवाजे देगा। अगर बिरहमन की मर्जी हुई तो हट गया, नही तो नही मजाल है चमार उधर से गुजर जाये ?

३ सैनिक : और फिर वह तो बड़ा पडत था। वह तो शायद सुपने मे भी नही जायेगा।

१ सैनिक : लेकिन कमबख्त न जाने कहाँ जमीन मे घुस गया। गीदड के भी पजो के निशान होते हैं, यहाँ यह हालत है कि कही नजर ही नही आता।

२ सैनिक : रात का तो दिन बन गया। जिधर देखो उधर मशालें ही मशाले नजर आती है। सिपाही बावले हो रहे है। घुडसवार ढूँढ़ रहे हैं।

१ सैनिक : कहते हैं यहाँ के बिरहमन जादू जानते है।

२ सैनिक : अल्लाहपाक की क़सम ! जानते हो या न जानते हो, यह वाला तो जरूर जानता था।

३ सैनिक : तो फिर ?

२ सैनिक : लौटिये और क्या ?

१ सैनिक : चमारो की बस्ती भी देख लेते।

२ सैनिक : मज़ाक करते हो ? बुतपरस्त ब्रिरहमन, मजहब का इतना दीवाना, मौत के मुँह मे आकर तो मूरत ले गया, वह अपने सदियों के ख़यालातों को छोड़ देगा ? बेकार हैरान होना है। मेरे खयाल में तो चील के घोसले मे गोश्त के टुकडे ढूँढ़ना ब्रिहरमन को चमारों की बस्ती मे ढूँढने से ज्यादा अक्लमन्दी है।

३ सैनिक : चलो, चलो, वक्त जाया करने से फायदा ही क्या ?

[प्रस्थान। रामानुज, कुप्पन, मुरुगन और चित्री का प्रवेश।]

रामानुज : कुप्पन, मै जाता हूँ। इस उपकार का बदला मै कभी भी नही चुका सकूगा।

कुप्पन : इसमे उपकार कैसा महाराज ! क्या वे हमारे भगवान नही है ? जो हमने किया, अपना समझ कर ही किया ?

चित्री : आइये स्वामी ! इन्हे कुछ दूर पहुँचा आइये ।

मुरुगन : चलिये ।

रामानुज : अब मै चला जाऊँगा ।

मुरुगन : नही अभी सैनिको के मिलने का भय है ।

[रामानुज का मुरुगन के साथ प्रस्थान ।]

कुप्पन : यह मनुष्य नही देवता है ।

चित्री : मैने आज तक ब्राह्मण देखे थे । यह ब्राह्मणो मे पहला मनुष्य है ।

कुथन : चलो चित्री ! रात बीत चली ।

[प्रस्थान । पटाक्षेप ।]

———

अंक ७

[विष्कंभक]

[पथ। कुछ नागरिक। एक साधु।]

साधु : जय शकर ! चमत्कार देखेगा ? देख ! आज के दो महीने बाद तेरे घर की बाई ओर की खिड़की गिर जायेगी। यदि तू चाहता है कि वह अमगल दूर हो जाये, तो आज साधु को भोजन करा दे बच्चा।

१ नागरिक : महाशय दया करे। मै बड़ा दीन हूँ।

साधु : हम क्या नही जानते वत्स ! तभी हम तुझ पर कृपा करने को यहाँ पधारे हैं।

२ नागरिक : अरे जा जा। पाखण्डी ! यहाँ तेरी दाल नही गलेगी। हम श्रीवैष्णव हैं। हम भक्ति से काम लेते हैं। तू हमे बचायेगा ? यदि इतना महान् होता तो ऐसे गर्व की बाते करता ?

साधु : तुम सब उस रामानुज के शिष्य हो ? (हँसकर) कैसा भागा वह ! कुलोत्तुग महाराज के पास नहीं गया फिर ?

२ नागरिक : कुलोत्तुग असहिष्णु है। वहाँ से जब आचार्य होयसल नरेश वित्तिदेव के पास गये, तो महाराज वित्तिदेव उनके शिष्य बन गये।

साधु : वित्तिदेव ! हमारा राजा कुलोत्तुङ्ग है। हमें तो उसी से मतलब है।

[कुछ सैनिक निकलते हैं।]

२ नागरिक : राजा यदि अन्यायी हो तो क्या हम उसकी प्रशंसा करें ?

साधु : तू राजा की निन्दा करता है ?

[सैनिक पकड़ लेते हैं।]

सैनिक : चल तुझे न्यायाधीश के पास चलना पडेगा।

[भीड़ इकट्ठी होती है।]

२ नागरिक : चलो। मै नही डरता। परन्तु मनुष्य को किसी भी विश्वास को मानने की स्वतत्रता है। जिस राज्य मे यह नही है, वह राज्य राज्य नही है।

[ढोंढी पिटती है 'महाराजाधिराज चोलाधिपति सर्वशक्तिमान श्रीमान् कुलोत्तुङ्ग का स्वर्गवास हो गया। उनके पुत्र हमारे नये महाराजधिराज ने अपने राज्यारोहण के समय पहली घोषणा की है कि वे प्रत्येक संप्रदाय को अपनी बात कहने की पूर्ण स्वतंत्रता देंगे।']

[ढोंढी वाला जाता है।]

भीड़ : छोड़ दो उसे।

[सैनिक छोड़ कर जाते हैं। साधु भागता है।

१ नागरिक सवाद आचार्य के पास जा चुका है। वे सुनते है, यही श्रीरङ्गम् मे आकर शल्वपिल्लै की प्रतिष्ठा करेंगे। अबकी बार सुना गया है, वे प्रत्येक आलवार की मूर्त्ति भी मदिर मे स्थापित करेंगे।

२ नागरिक : जय ! आचार्य रामानुज की जय !

[जय जयकार।]

२ नागरिक : बधुओ ! धर्म क्या है ? हमारा दैनिक जीवन। जो

भी हमें मनुष्य से प्रेम करने से रोकेगा, हम उसका विरोध करेंगे। यही आचार्य की शिक्षा है।

१ नागरिक : आचार्य अब वृद्ध हो गये हैं।

२ नागरिक : कितना परिश्रम करते हैं! कोई कर सकेगा? उन्होंने तो मनुष्य के कल्याण के लिये अपना जीवन ही दे दिया है।

[सबका प्रस्थान। पटाक्षेप।]

अक ७

दृश्य १

[महापूर्ण और कुरेश तथा अलमेलुमंगा पथ पर।]

महापूर्ण . आज तो आचार्य आने वाले है।

अलमेलु : सारा नगर ऐसे सज रहा है जैसे कोई सम्राट आ रहा है।

कुरेश सम्राट उसके सामने क्या है, माता ?

महापूर्ण : चलो घर चलें। हम भी स्वागत की तैयारी करे।

अलमेलु : चलो।

[प्रस्थान। गोविन्द भट्ट का प्रवेश। वह वृद्ध है।]

गोविंद : कितने दिन बाद आज मै तीर्थयात्रा करके लौटा हूँ। समस्त नगर आज इतना विह्वल क्यो है ? अरे भाई सुनो !

[एक नागरिक का प्रवेश]

नागरिक : क्या है ?

गोविंद : आज यह नगर मे आनन्द क्यो है ?

नागरिक : आज परमपूज्य रामानुजाचार्य लौट कर आ रहे हैं। आज वे पाञ्चराम उपासना को स्थान देगे। अभी तक इसे अनार्य कह कर केवल वैश्वानर पद्धति को स्थान दिया जाता था !

[प्रस्थान]

गोविद : नारायण ! तुम इस रामानुज से क्या-क्या करा दोगे ?

कितने दिन का विद्वेष मिट जायगा। शंकराचार्य ने केवल श्रुतिप्रमाणित पञ्चदेवोपासना को स्वीकार किया था, किंतु भागवतों को सबने छेंक रखा था।

[वृद्ध वरदरङ्ग का प्रवेश।]

गोविंद : पहचाना आचार्य ?

वरदरंग : आचार्य !! बहुत दिन बाद दिखाई दिये ?

[परस्पर दण्डवत् करते हैं।]

गोविंद : समस्त आर्यावर्त्त और दाक्षिणात्य में भ्रमण करके आ रहा हूँ। प्रत्येक स्थान पर शंकराचार्य ने मठ स्थापित किये हैं, उन सब का दर्शन कर आया हूँ।

वरदरंग : इधर तुम नहीं रहे। देखते आचार्य रामानुज ने समस्त परम्परायें स्वच्छ कर दीं। भारुचि, टङ्क, बोधायन, गुरुदेव, कपर्दिक, द्रमिलाचार्य, ब्रह्मनदी, श्रीपराङ्कुश, नाथमुनि और ज्योतीश्वर इत्यादि से वे बहुत आगे बढ़ गये हैं।

गोविंद : तो क्या यतिराज शंकर से भी अधिक ?

वरदरंग : वे अपने स्थान पर, यह अपने स्थान पर। चलो, मेरे साथ। यहाँ क्या कर रहे हो ?

गोविंद : चलो !

[प्रस्थान वेदनायकी का प्रवेश। वृद्धा है।]

वेदनायकी : कहाँ जाऊँ ? मैने जीवन में क्या किया है जिसके लिये कोई सम्मान पाऊँ ? सारा जीवन अपनी चिंता और स्वार्थ में चला गया। कोई भी शांति आज तक नहीं मिली। वेदनायकी, चल, किसी पाथशाला में ठहर जा। जैसे तेरे स्वामी हैं, वैसी न सही, परंतु फिर भी वे हैं तो तेरे ही स्वामी ...

[प्रस्थान। पटाक्षेप]

दृश्य २

[श्रीरंगम् के मंदिर का प्रांगण। अनेक ब्राह्मण वहाँ खड़े हैं। रामानुज का गोविंद भट्ट के साथ प्रवेश। पीछे यादव-प्रकाश है।]

१ ब्राह्मण : रामानुजाचार्य !

रामानुज : ब्राह्मण देवता ! आपने मुझे स्मरण किया ?

१ ब्राह्मण : स्मरण हमने नहीं किया आचार्य। पर क्या यह सत्य है कि आप पवित्र कावेरी से घिरे हुए इस प्राचीन मंदिर को कलुषित कर देना चाहते हैं ?

रामानुज : मैं आपका तात्पर्य नहीं समझा ब्राह्मण देवता। मैं वृद्ध हूँ। मुझसे स्पष्ट कहिये।

२ ब्राह्मण : आप वृद्ध हैं, यदि एक ओर यह आपके लिये सम्मान का विषय है, तो दूसरी ओर हमें यह सोचने को विवश करता है, कि कहीं बुढ़ापे ने आपकी बुद्धि पर तो आक्रमण नहीं कर दिया ?

यादवप्रकाश : उससे कह रहे हो ब्राह्मण जिसने सेतु से लेकर हिमालय तक प्रचण्ड मेधावी बन कर ज्ञान से दिग्विजय की है। जिसके सहस्रों शिष्य आज उत्तराखंड और दाक्षिणात्य में सिर झुका रहे हैं। सोचकर बोलो ब्राह्मण, पेरम्बुपेरम में जन्म लेने वाला यह साधारण व्यक्ति आज अपनी प्रतिभा, कर्त्तव्यनिष्ठा और पवित्रता के बल पर अपनी महानता प्रमाणित कर चुका है। कौन है तुममें से जो इस असाधारण ज्ञानी के सामने खड़ा हो सके ? तुम्हें लज्जा नहीं आई कि जिसने तुम्हारे लिये हाथ पर जीवन को रख लिया, जिसने तुम्हारे लिये सब कुछ किया, उस पर तुम ऐसे छिछले प्रहार कर रहे हो ?

१ ब्राह्मण : ठीक कहा आचार्य कुलजात श्रेष्ठ ! तुमने ठीक कहा। परंतु क्या चमारों को मंदिर में घुसा कर आचार्य अनर्थ नहीं कर रहे हैं ?

गोविद : ब्राह्मण !

रामानुज : क्रुद्ध न हो गोविद ! मुझे इस प्रश्न का उत्तर देने दो। (**आगे बढ़कर**) ब्राह्मण ! जब सुलतान शल्वपिल्लै को ले गया था, तब तुम कहाँ थे ?

१ ब्राह्मण . हम निर्बल थे, अत' उस समय अपने आराध्य की रक्षा नही कर सके। किंतु मूल मूर्त्ति तिरुनारायणम् को हमने बचा लिया। सुल्तान केवल उत्सव मूर्ति ही ले जा सका।

रामानुज ' तुम्हे इसी का सतोष है, ब्राह्मण। किंतु मै शल्वपिल्लै को भी लेकर आया हूँ और जो उपकार करता है, उसको क्या उपकार का बदला नही देना चाहिये ?

२ ब्राह्मण : हम आपको हाथियो से स्वर्णकलश उठवा कर अभिषेक दे सकते हैं, किंतु चमार... ..

रामानुज तुम चमार से घृणा करते हो, ब्राह्मण ! मै मनुष्य के आचरण को देखता हूँ। प्राचीन काल की दुहाई नही देना चाहता, किंतु शूद्र हमारे हैं, शूद्र हमारे हैं. वे हमारे समाज के चरण है। उन्ही के बल पर समाज जीवित खडा है। विष्णु के जिस चरण से शूद्र निकले हैं, उसी से पतितपावनी गगा भी प्रवाहित हुई है। कहो वह भी अपवित्र है ?

[**सब चुप रहते हैं।**]

रामानुज : [**घूमकर**] सब चुप हैं। बोलते क्यो नही ? कहाँ है तुम्हारा अहकार ब्राह्मण। दभ ने तुम्हे अधा कर दिया है। स्वार्थो ने तुम्हारी आँखो पर पट्टी बाँध दी है।

१ ब्राह्मण : आचार्य ! आप क्या कह रहे हें ?

रामानुज : क्या कह रहा हूँ ? सुनना चाहते हो ? एक दिन जिस चमार को तुमने पथ पर चिल्ला-चिल्ला कर पथ माँगते हुए देखकर भी राह नही दी, जिसकी स्त्री अत मे रोती हुई अपने बालक का शव लेकर

निकल कर पथ पर आ गई, और जिन्हे तुमने उस समय भी हिंस्र पशुओं की भाँति मार कर पथ का भिखारी बनाकर निकाल दिया, वही हैं इस तुम्हारे देवता के रक्षक। अपने प्राणों का भय न करके उन्होने इस शल्वपिल्लै की रक्षा की है। क्या था उन्हे लोभ? क्या वे अन्य धर्मावलम्बी नही बन सकते? उस समय जब वे तुलुक बन जायेंगे तुम उन्हे बराबर का आसन दे दोगे? परतु जब तक वे तुम्हारे पाँव के नीचे हैं, तुम उन्हे कुचल कर ही छोड़ोगे? तुम मनुष्य को पशु बनाकर रखने मे अपना गौरव समझते हो? तुमने अपने चारो ओर क्षमा, त्याग और दरिद्रता का आडम्बर खड़ा कर रखा है। सब कुछ माया-माया कह कर भी तुम सबसे उसी माया की दक्षिणाएँ एकत्र करते चले जा रहे हो। तुम भ्रम मे डूबे हुए हो। आत्मा की झिल्ली उतार कर देखो, तुम केवल मनुष्य हो। ससार के समस्त मनुष्य तुम्हारी भाँति ही हैं। और वे जो तुम्हारे बनने के लिये तुम्हारी ओर स्नेह से हाथ बढाते हैं, तुम उन्हे अहकार मे ठोकर मारते हुए भी नही हिचकिचाते?

गोविंद : आचार्य! शात रहे। यह सब निर्बल आत्माएँ है। आप चमारो को बुलायें। भगवान का दर्शन करना सबका अधिकार है। यदि यह ब्राह्मण इसे स्वीकार नही करते तो कम से कम आज कोई चमारों को इस गरुड़स्तम्भ के पास आने तक नही रोक सकता।

१ ब्राह्मण . तो क्या आप निश्चय कर चुके है, आचार्य?

२ ब्राह्मण : हम नही जानते। आप महान् हैं। आप समर्थ है। हम वही करते हैं, करते रहे है जो परम्परा से होता आया है। इस पाप का उत्तरदायित्व भी आप पर है।

रामानुज : (हँस कर) एक बार नही अनेक बार। यदि यह पाप है तो यह पाप मुझे बार-बार प्रत्येक जन्म में करना पडे। गोविंद!

गोविंद अभी ले।

[प्रस्थान। लौटता है तो कई चमार साथ होते हैं। वे चावल और तेल लिये आते हैं।]

१ ब्राह्मण : ए ए ! वहीं अपना चावल और तेल पुष्करिणी के के पास रख दो। वहीं स्नान कर लो।

२ ब्राह्मण : शिव ! शिव ! यह क्या हो रहा है ?

रामानुज : वत्स ! ब्राह्मण दंभ का पाप धुल रहा है। चिंता मत करो, सारा उत्तरदायित्व मुझ पर छोड़ दो।

१ ब्राह्मण : तो क्या चावल तेल हमें ही पकाना होगा ?

रामानुज : क्यों ब्राह्मण देवता ! भोग और प्रसाद तो पुजारी के ही हाथ लगने से पवित्र होता है न ?

२ ब्राह्मण : शिव ! शिव ! अब यह भी पवित्र होगा ?

१ ब्राह्मण : होगा तब होगा। अभी तो कल के लिये काम लग गया कि समस्त मंदिर धोकर पवित्र करना पड़ेगा।

[सब चमार बड़ी भक्ति से दण्डवत करते हैं। चित्री, मुरुगन और कुप्पन भी हैं।]

चित्री : नारायण ! तुम सचमुच दीनबंधु हो, तभी तो तुमने दीनों का उद्धार करने के लिये आचार्य को भेजा है !

मुरुगन : आचार्य आप पवित्र हैं। आपका हृदय अत्यंत कोमल है। आप मनुष्य का दुख नहीं देख सकते। नहीं तो, हम चमार ! हमारी तो छाया से भी सब कुछ अपवित्र हो जाता है ! हम यहाँ ? जो स्वप्न में भी नहीं सोचते थे वह कैसे पूर्ण हुआ ? सच अभी तक विश्वास ही नहीं होता। कहीं यह सब उपहास तो नहीं है ?

रामानुज : इतना वृद्ध हूँ, परंतु अभी तक तुम्हारे स्पर्श से अपवित्र होता हुआ तो मुझे कुछ भी नहीं दिखा। बहुत दिन तक तुम ऐसे त्याज्य मान लिये गये थे कि तुम्हें आज इस छोटी सी बात पर भी आश्चर्य हो रहा है।

कुप्पन : स्वामी ! आप भक्तों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

रामानुज : (मुस्कराकर) अभी कुछ दिन पूर्व ही तो यहाँ आलवारों

की मूर्त्तियो की स्थापना हुई है। उन्हे देखो कुप्पन। तुम्हे यह जानकर आश्चर्य होगा कि तिरुप्पन् आलवार भी चमार थे। किंतु ऐसे पण्डित थे, ऐसे भक्त थे कि विवश होकर उनके सामने सब प्रकार के अहकार को सिर झुकाना पडा।

[चित्री भूमि पर लेट कर।]

चित्री : आचार्य ! आज सारे जीवन की इच्छा पूरी हो गई। अब कही जाने की इच्छा नही रही।

२ ब्राह्मण . तो तू क्या यही मरेगी ?

चित्री अब नहीं मरूँगी ब्राह्मण देवता। अब मै जी गई। मेरे जीवन की आग मुझे भीतर ही भीतर खा रही थी। मेरा बालक तुम्हारे कारण ही बिना औषधि के मर गया था। अब वह बालक मुझे मिल गया। अब वह बालक मुझे मिल गया !

कुप्पन : कहाँ चित्री ?

चित्री यह शल्वपिल्लै कौन है, कुप्पन ! वह मेरा बालक है। उसे अपनी गोदी मे छिपाकर रखा था। उसे जब मैने हृदय से लगाया था, तब मेरे भीतर से विद्वेष निकल गया था।

रामानुज · धन्य हो चित्री। तूने माता का वह महान् हृदय पाया है, जिसमे आनद का वही स्फुरण है जो जगन्माता मे वर्णित किया गया है, जिसकी समवेदना मे निखिल ब्रह्माण्ड का स्पदन स्नेह मे परिणत होकर नई शक्ति का सचार करता है।

चित्री : यह सब नही जानती ब्राह्मण देवता ! तुम सचमुच पृथ्वी के देवता हो। जो मै जीवन मे कभी नही सोचती थी, वह आज हुआ। कितनी बार न यह हूक उठकर मन में रह गई कि हाय मै वहाँ तक यदि जा सकती ? वह आग बुझ गई। ऐसा लग रहा है हम सब एक विशाल परिवार हैं।

रामानुज : सारा ससार एक विशाल परिवार है, चित्री ! भक्ति के क्षेत्र मे मनुष्य एक है तब भगवान के सामने सब समान हैं। यह आपस

के भेद हमारे दीनसत्य हैं। वे इतने निर्बल हैं कि जब हम भगवान का नाम लेते हैं, तो वे हमारे पथ की बाधा नही बन सकते !

कुप्पन : नारायण ! शक्ति दो ! तुम्हे अपने हृदय मे हम अचल स्थान दे सके।

रामानुज · ब्राह्मण देवताओ ! आज नही। आज से प्रत्येक वर्ष बाद इसी दिन स्वय ब्राह्मण ही चमारो को यहाँ तक लाकर उन्हे अपने हाथ से बनाकर खिलायेगे। उन्हे उनके भगवान के पास जाने देंगे।

१ ब्राह्मण : स्वीकार है आचार्य। यह उनका अधिकार है।

२ ब्राह्मण : शिव ! शिव ! मुझे भी स्वीकार है। परन्तु यह दिन यदि सबसे छोटा दिन हो तो बहुत अच्छा हो। मूर्खो भगवान की जय तो बोल दो !

[चमार जय बोलते हैं। जयध्वनि के साथ पटाक्षेप।]

दृश्य ३

[पथ। युवती शाहजादी आ रही है। वह थकी-मांदी, अकेली है। एक नागरिक आता है।

शाहजादी : (बैठ कर) हे पथिक ! यही श्रीरङ्गम् है न ?

नागरिक : यहाँ से तीन मील दूर है। यह वरयऊर है।

शाहजादी : उफ ! कितनी यात्रा ! कितना कष्ट। फिर भी मै यहाँ पहुँच ही गई।

नागरिक : तुम कौन हो ? तुम तो बड़ी सुन्दर हो।

शाहजादी . कौन हो यह न पूछो, पथिक। यह पूछकर करोगे भी क्या ? आ गई हूँ, मेरे लिये यही बहुत है।

नागरिक : तुम तो तुर्क मालूम देती हो ?

शाहजादी : ठीक ही है नागरिक ! मै सुल्तान की बेटी हूँ।

नागरिक : (चौंककर) सुल्तान की बेटी !! तुम यहाँ अकेली ? इस तरह पैदल भटक रही हो ? अरे तुम्हारे पाँवो से लहू निकल रहा है ?

[शाहजादी थक कर लेट जाती है ।]

शाहजादी : लहू ? राह मे बडे काटे थे, परन्तु मुझे जल्दी थी, उसे पार करके आई हूँ, पथिक । मै बहुत थक गई हूँ । मुझे पानी पिला सकोगे ?

नागरिक : क्यो नही ?

[प्रस्थान । एक पात्र में जल लाता है । शाहजादी को पिलाता है । शाहज़ादी उठकर बैठती है ।]

शाहजादी : पथिक ! अब मै नही चल सकती । अब मुझसे नही चला जाता । मेरा एक काम कर सकोगे ? मरते समय जो कहती हूँ वह ध्यान से सुनना ।

पथिक : कहो देवी !

शाहजादी : बड़ी कठिनाई से यहाँ आई हूँ । सब कुछ छोड़ दिया । वे सब मुझसे क्रुद्ध हैं । किसी तरह चुपचाप भाग कर निकल सकी हूँ । (हँसती है) जब उन्हे मालूम होगा तब मै यहाँ रहूँगी ही नही ।

पथिक : शाहज़ादी साहिबा ! आप क्यो निकल आई ?

शाहजादी : वह तुम्हारा वह है न ? उसे देखने आई हूँ ।

पथिक : किसे ?

शाहजादी : अरे उस बूढे भगत का क्या नाम है ? वह कही है या नही ?

पथिक . कौन ?

शाहजादी : वह तो पूरी तरह याद नही । पर मूरत का नाम तो कुछ ऐसा था, शल्वपिल्लै . .....

पथिक : शल्वपिल्लै !! उसे तो रामानुजाचार्य लाये हैं ।

शाहजादी : ठीक । बिल्कुल ठीक पथिक ! तू मेरा भाई । मुझे वहाँ तक ले चल । मै उस मूरत को देखना चाहती हूँ, उसे देखे बिना मुझे चैन नहीं है । पथिक, मुझे ले चल, मुझे ले चल...... ..

[धरती पर लेट जाती है ।]

पथिक : शाहजादी.........

शाहजादी : ले चल . .. (बहुत धीरे से) ले चल.....

[मृत्यु ! पथिक देखता रहता है । फिर उसे देख कर उसकी आँखों के दो बूंद आँसू गिरते हैं । पटाक्षेप ।]

दृश्य ४

[श्रीरङ्गम् का मंदिर । रामानुज बैठे हैं । गोविदभट्ट और महापूर्ण स्वामी पास ही हैं । पथिक का प्रवेश ।]

पथिक आचार्य की जय ! मै एक अद्भुत सवाद लाया हूँ ।

रामानुज : कौन हो तुम !

पथिक . आचार्य ! सुल्तान की पुत्री वंरयऊर मे आकर दिवगत हो गई है । वह शल्वपिल्लै के दर्शन के लिये सब कुछ छोड कर आ गई थी । दुर्भाग्य से वह वही मर गई, यहाँ तक पहुँच नही सकी । उसने आपके बारे मे पूछा था । वह आपको जानती थी ।

रामानुज (खड़े होकर) क्या कहा वत्स ! शाहजादी ! वह बड़ी कोमल-हृदय बालिका थी । उसमे मनुष्य के प्रति प्रेम था, वैमनस्य की झलक भी न थी ।

महापूर्ण (हाथ फैलाकर) रामानुज ! कौन ! कौन थी वह ?

रामानुज : उसी ने मुझे शल्वपिल्लै दे दिये थे महापूर्ण स्वामी ! उसी ने मुझे तो भागने का समय दिया था । वह मेरी व्याकुलता देखकर स्वय व्याकुल हो गई थी । उसका हृदय कितना महान् था, गुरुदेव !

[अलमेलुमङ्गा का प्रवेश ।]

अलमेलु : क्या हुआ ?

रामानुज : मै कहता था न माता ? स्त्री का हृदय ही भक्ति का

सच्चा केन्द्र है। वही सत्य हुआ न ? माता ! सुनती हो ? मै आनद से विह्वल हुआ जा रहा हूँ ।

महापूर्ण : (गद्गद होकर) जवन की साधना, अपनी न सही औरौ की तो है। वह इतनी भक्त थी ? उसने तो नारायण ! तुम्हे देखा भी नही था !

रामानुज : देखा क्यों नही था, गुरुदेव ! नारायण को उसी ने नही देखा, जिसने मनुष्य के स्नेह को नही देखा। जिसने मनुष्य की वेदना को देखा है। तुम कहते हो, उसने ईश्वर नही देखा ? वह निर्लिप्त हमारे पास हमारी वेदना के द्वारा ही तो आती है !

अलमेलु : कुछ मुझे भी तो बताओ ! पथिक, तुम ही कहो न ?

गोविद : यह सब और क्या है माँ ! सब ही तो बता रहे है ! वह महान् थी। और तो जो कुछ लोगों ने किया सो किया, गोविद ने कभी कुछ नही किया। पर गोविद को इसी का सुख है कि यद्यपि उसने स्वय कुछ नही किया पर उसने उन सबो को देखा और सुना, जो महान् हैं, जिन्होने बहुत कुछ किया। पथिक ! हमारे तुम्हारे जीवन मे यही सतोष बहुत बड़ी निधि है।

रामानुज : माता ! शाहजादी रङ्गनाथ के पास आ रही थी। परन्तु रङ्गनाथ ने उसे बीच मे ही अपने पास बुला लिया।

महापूर्ण : धन्य हो, धन्य हो।

रामानुज : उसकी अटूट भक्ति देखकर भक्तवत्सल का हृदय विचलित हो गया। परन्तु गुरुदेव ! मेरा हृदय नही भरा। मेरा मन कहता है—रामानुज, भक्त का पूरा सम्मान नही हुआ।

[सब चौंकते हैं। पटाक्षेप।]

दृश्य ५

[वरयऊर। अनेक स्त्री और पुरुष। रामानुज आगे-आगे

आ रहे हैं। आकर रुकते हैं। पीछे अधे कुरेश और महापूर्ण स्वामी हैं, उनके बीच मे अलमेलुमङ्गा है। सामने शाहज़ादी की मूर्ति है। गोविद का प्रवेश।

रामानुज : गोविद ! देखते हो ? रङ्गनाथ आये है।

गोविंद : क्या हुआ आचार्य ?

रामानुज : डेढ कोस से रङ्गनाथ यहाँ शाहजादी को देखने आये हैं। (**हँसकर**) भक्त का सम्मान करना क्या हमारे भगवान का धर्म नही है ? वे सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान है। माना उन्होंने शाहजादी की भक्ति देख उसे राह मे ही अपने पास बुला लिया, परन्तु हमने क्या देखा, गोविद ?

गोविद : क्या देखा आचार्य ?

रामानुज : यहाँ की बिचारी शाहजादी की इच्छा पूरी नही हुई। वह अतृप्त अभिलाषा लिये चली गई। गोविद ! वह कुछ नही जानती थी फिर भी वह किस प्रेरणा से भगवान शल्वपिल्लै के मिलने के लिये चल पड़ी ? हृदय की अगाध श्रद्धा ! श्रद्धा और भक्ति उसे खीच लाई ! उस भक्त का भगवान ऐसे जल्दी करके अपमान कर दे ? हमसे अपने आराध्य की यह भूल नही देखी जाती, गोविद। हम श्रीरङ्गम् से रगनाथ को आज के लिये यहाँ इस मूर्त्ति के सामने ले आये है !

गोविद : आचार्य ! ब्राह्मणा ने इसे स्वीकार कैसे कर लिया कि एक मुसलमान औरत को मूर्त्ति बनाई जाये और मदिर से स्वय रगनाथ की मूर्त्ति उसके लिये उठाकर लाई जाये ? उन्हाने विरोध नही किया ?

अलमेलु : विरोध ? क्या नही किया उन्होंने। पर वे तो अब भी वहाँ तैयारी कर रहे है कि जब रगनाथ वापिस जाये तब रगनाथ ही उनका विरोध करे।

रामानुज : साधन भक्ति और फल भक्ति। प्रपत्ति ही न्याय विद्या है। अनुकूल जो भी है उसका सकल्प करना चाहिये और जो प्रतिकूल है उसका वर्जन। भगवान मे आत्मसमर्पण कर देना ही प्रपत्ति है

[अंधे कुरेश और महापूर्ण के साथ अलमेलुमङ्गा का प्रवेश। बैठते हैं।]

अलमेलु : आचार्य! हम भी काची आ गये।

रामानुज : अब वार्द्धक्य आ गया है। मामा का स्वर्गवास हो जाने के कारण तिरुपति चला गया था। वहाँ समुद्रतीरस्थ जल मे से निकलवाकर भगवान गोविंदराज की मूर्त्ति प्रतिष्ठापित कर दी है। अब मैने भ्रमण बद कर दिया है। मैने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया है और ७४ शिष्यों को श्रीवैष्णव सप्रदाय का प्रचार करने के लिये विभिन्न भू-भागो मे भेज दिया है। अब वे हिमालय से कन्याकुमारी तक सप्रदाय का प्रचार करेंगे। अब क्या है? जब तक शरीर मे शक्ति रहे तभी तक तो मनुष्य काम कर सकता है।

गोविंद और क्या भैया! वृद्ध तो एक आदर का प्रतीक है, सो भी तब ही यदि वह अपने ही स्वार्थों मे डूबता न चला जाये। यदि वह तरुणों को अच्छे और बुरे का ज्ञान करा सके।

महापूर्ण : वार्द्धक्य मे जहाँ एक ओर मनुष्य की बुद्धि परिपक्व होती है। वहाँ उसके जड़ हो जाने का भी भय बना ही रहता है।

[सब हँसते हैं। वेदनायकी का धीरे-धीरे प्रवेश और आकर रामानुज के चरणों पर गिर जाती है। वह रोती है।]

अलमेलु : अरे वेदनायकी। पुत्री! आज तू बहुत दिनो मे आई।

वेदनायकी : (अलमेलु के चरणो पर गिर कर) क्षमा करो माता। अब मेरे हृदय के सारे पाप स्वामी के पुण्य के कारण धुल गये हैं।

रामानुज : वेदनायकी! उस क्षण जो तुम ममता को ठुकरा कर चली गई थी, वही तो मेरी साधना की इतनी बडी शक्ति बन गई। बैठो। हम सब एक ही पथ के पथिक हैं। पाप से रहित कौन है? दूसरे को दुख देना ही तो पाप है। बाकी सबतो भूल है।

वेदनायकी : स्वामी! मै अपने क्षुद्र बधनो मे इतनी बधी हुई थी कि उनके बाहर सोचना भी मेरी शक्ति के बाहर था। मै तुम जैसा पति पाकर धन्य हूँ जिसने अपनी स्वार्थ जडिमा का ऐसे त्याग कर दिया। यदि तुम उस समय मुझसे ऐसे बाते न करते, तो मेरा अहकार आज तक मुझे खाता रहता। जीवन के अतिम समय मे जो मुझे शाति मिली है, मेरे सारे जीवन की तुलना मे यही तो आज मुझे प्रिय है। मै धन्य हूँ। माता (अलमेलु से) मैने तुम्हारा अपमान किया था, यह लज्जा मेरे भीतर अब भी बनी हुई है।

अलमेलु : खेद न करो वेदनायकी। जो हुआ अच्छे के ही लिये हुआ। मेरे कारण ही तो तुम्हे जीवन भर एकात मे रहना पडा। यदि तुम पति के ही साथ रहती तो न जाने ससार की कितनी अधिक सेवा कर पाती।

[नेपथ्य में—जय! आचार्य रामानुज की जय! जय! आचार्य रामानुज की जय!]

वेदनायकी : दिगतों मे नाम गूँज रहा है। दक्षिणात्य मे प्रेम की लहर इस ओर से उस ओर तक फैल गई है। मैने क्या वह सब देखा नही? परतु स्त्री हूँ। स्त्री क्या पुरुष की भाँति बुद्धि रखती है? स्त्री की मर्यादा उसका घर है। वह उसके बाहर सोच ही नही पाती।

रामानुज : नही वेदनायकी। यह भूल है। यदि स्त्री पुरुष को ससार के लिये परमार्थ मे रोकती है, तो वह अवश्य उसकी निर्बलता है क्योंकि तब वह अपने घर के घेरे के बाहर नहीं जा सकती। किंतु यदि वह उसे सत्पथ पर बढ़ते देखकर उसकी सहायता करे तो वह पुरुष की

शक्ति को असीम बना देती है। पुरुष और स्त्री की आत्मा समान हैं। भगवान के सामने दोनो समान हे। हमारे वाह्य भेद माया नही हैं, वर्त् हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। हममे परस्पर वैमनस्य खडा करके स्त्री को दूषित कहने की जो प्रवृत्ति पड गई है, वह इसलिये कि पुरुष शून्य को लक्ष्य बना कर चलता था, स्त्री ठास धरती का चिंतन करती है। वह वास्तविकता को अपना लक्ष्य बनाती है।

महापूर्ण धन्य हो आचार्य! तुम धन्य हो। तुमने ठीक हा कहा। जो भक्ति करके ससार से पराड्मुख रहना चाहते है, वे भक्ति और ससार ही नही, भगवान से भी पराड्मुख होते हैं। वे केवल ढोग करते है।

वेदनायकी : परन्तु स्त्री अधिक अधविश्वास रखती है!

कुरेश : (हॅसकर) भाभी! वास्तविकना यह है कि स्त्री को कोई शिक्षा नही देता। स्त्री माता है। वह ही तो मनुष्य के ज्ञान की परम्परा को पालती है।

अलमेलु : बहुत हुआ। अब वेदनायकी का मन हल्का हुआ या नही।

वेदनायकी . अब मेरे मन मे कोई ज्वाला नही है, माता! मै शात हूँ। वह सारा दाह ऐसे मिट गया है जैसे एक विदग्ध दावामय वनप्रान्तर पर किसी नील नीरद ने मद्रध्वनि के साथ शीतल जलधारा बरसा दी हो। ईर्ष्या और सदेह के वे वृक्ष खडे थे। वात्सल्य की ठोकर खाकर वे वृक्ष ऐसे समूल गिर गये, जैसे कृष्ण के आघात से यमालार्जुन गिर गये थे।

कुरेश भाभी! वे ही जीवन मे आगे बढ पाते हैं, जो ससार के हित मे अपने सुखो का त्याग कर देते हैं। वे यश के लिये यह सब नही करते। यश तो सत्कर्म का दास है।

वेदनायकी समझ रही हू, देवर! आज सब स्पष्ट हुआ जा रहा है।

अलमेलु : पाप धुल गये हैं। वेदना तो अभी नही गई?

रामानुज : वह बनी रहे माता, इसी मे कल्याण है। वह ही निरतर आगे बढाती है। मनुष्य को मनुष्य के समीप कौन लाता है—वेदना। वही मनुष्य के मन रूपी दर्पण पर पडे अहकार की भाफ को दूर करती है, अपने स्वच्छ स्पर्श से और कल्याणी छवि का आकृति को उस दर्पण मे प्रतिबिम्बित करके उसे दिखाती है।

[नेपथ्य में कहीं वीणा बजती है। शात स्वर।]

महापूर्ण : यह कैसी ध्वनि आ रही है जा आत्मा के विचारो मे आलोक फैला रही है।

[वीणाध्वनि बन्द होती है।]

रामानुज इसी दिव्य सगीत की भाँति ही जावन है जो कुछ देर गूँजता है और फिर थम जाता है। उसकी प्रतिध्वनि का किसी को छोर नही मिलता। और वह प्रतिध्वनि जितने ही विराट उद्दश्य के सामने बोलती है, उतनी ही देर उसका जोवन भी चलता है।

[नेपथ्य से]
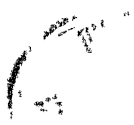
करुणा कर हे, करुणा कर हे,
तूने ही आज पुकारा है,
जब जब जावन पर भीर परी,
तूने ही मुझे दुलारा है,
करुणा कर हे, करुणा कर हे !

[सब गीत सुन कर चौक उठते हैं। रामानुज सुन कर खड़े हो जाते हैं। उन्हें उठते देखकर सब उठते हैं। महापूर्ण और कुरेश भी टटोलते हुए खड़े हो जाते हैं। सगीतध्वनि समीप आ रही है।]

[नेपथ्य से]

करुणाकर हे, करुणाकर हे,
तेरा ही एक सहारा है,
तूही मझधार पड़े मन का जीवन मे एक किनारा है।
करुणाकर हे, करुणाकर हे!

रामानुज : कौन? यह किसकी पुकार है जो अतराल को अपनी आर्त्तवेदना से प्लावित कर रही है।

[राजलक्ष्मी का प्रवेश। गाती है।]

गीत

जब जीवन मे अधियारा है,
तू ही इस डग डग भटक रहे मेरे मन का उजियारा है,
करुणाकर हे, करुणाकर हे!

रामानुज : गाओ! आनन्द विभोर होकर गाओ। मानव की शक्ति करुणा है। करुणा का प्रोज्ज्वल अतस्तल उसकी भक्ति है। भक्ति ही भगवान है, और भगवान मनुष्य का प्रेम है। समता है। राजलक्ष्मी! वेदना का स्वर फूटने दो, मनुष्य का कल्याण अवश्यम्भावी है। गाओ ··

[राजलक्ष्मी गाती है]

अब टूट रही दुख कारा है,
मोती से आँसू गिरते हैं,
वेदना बना इकतारा है··· ··
करुणाकर हे, करुणाकर हे···

[सब वंदना में विनत होते हैं]

राजलक्ष्मी :

तेरा ही एक सहारा है,
तू ही नभ्भधार पडे मन का
जीवन में एक सहारा है,
करुणाकर हे, करुणाकर हे

[नेपथ्य में गीत गूँजता है।]

[पटाक्षेप]